सिद्धयोग

सितम्बर १९९०

वर्ष
२३

अंक
९

ी सिद्धगुफा प्रकाशन
लँवाई, आगरा

'सिद्धयोग' आपको क्यों पढ़ना चाहिए ?

इसलिए कि इसके नियमित रूप में पढ़ते रहने से—

- ❋ आपको अपने ब्रह्मलीन गुरुदेव के अमूल्य योगोपदेशों से निकट सम्बन्ध बनाये रखने का अवसर प्राप्त होगा।
- ❋ अपने जीवन को अध्यात्म की उच्चतम भूमिकाओं पर ले चलने का बोध प्राप्त होगा।
- ❋ प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित कर्मों का स्वरूप समझने में सहायता मिलेगी।
- ❋ गुरु कृपा से असम्भव को भी सम्भव बना पाने का उपाय प्राप्त होगा।
- ❋ आसन, बन्ध और मुद्राओं के अभ्यास से स्वास्थ्य और सौन्दर्य को स्थिर रखकर रोगों से कैसे बचा जा सकता है, इसका परिचय प्राप्त होगा।
- ❋ प्राणायाम की विधि क्या है और उसके कितने प्रकार होते हैं यह सहज ही समझ पायेंगे आप इसमें नियमित रूप से प्रकाशित होने वाले प्राचीन और अर्वाचीन योगियों के लेखों से।
- ❋ ध्यान की गहराइयों में उतर कर आन्तर शक्ति को जगमग और जाग्रत बनाने के उपायों का परिचय पा सकेंगे।

तथा

- ❋ प्रत्येक अङ्क में गुरुदेवजी के अमूल्य उपदेश और जीवन की घटनाओं से आप अपना नित्य सम्बन्ध जोड़े रहने का लाभ प्राप्त करेंगे।
- ❋ अतः आप भूलिए नहीं 'सिद्धयोग' का नियमित पढ़ना।
- ❋ सिद्धयोग के ग्राहक परिवार से आप अपना सम्बन्ध आवश्यक और अनिवार्य रूप से जोड़े रहिए। —व्यवस्थापक

❋

परमयोगिनी
सु श्री कौशल्या देवी

❋

ोग प्रशिक्षण केन्द्र—श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम में पधारने पर लिया गया चित्र

❋

❋ श्री रामलाल प्रभवेनमः ❋

क्षण-क्षण स्मरणीय परमपूज्य सद्‌गुरुदेव

ब्रह्मलीन योगयोगेश्वर

श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

का

जन्म-दिवस समारोह

आश्विन शुक्ला १० (विजय दशमी)

सम्वत् २०४७ वि०

अर्थात्

दिनांक २९ सितम्बर १९९०, शनिवार

को

योग प्रशिक्षण केन्द्र

श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम

एत्मादपुर, जि० आगरा

पर

मनाये जाने का निश्चय किया गया है। समारोह में सम्मिलित होना सभी का पावन कर्त्तव्य है। अतः सभी गुरु भाई-बहिन समारोह में सस्नेह सादर आमन्त्रित हैं।

निवेदक :
कौशल्या देवी
संयोजक/संरक्षक

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

(अपनी अनन्त निद्रा में)

नीलकण्ठ बन स्वयम्, सुधा के कलश लुटाकर चले गए !
तुम अकाल थे प्रभुवर ! फिर भी काल पुरुष से छले गए !!

नोट—गुरुवर की पार्थिव मुखाकृति का यह चित्र सवाई आश्रम पर दिनांक २६ जून सन् १९६० को मध्याह्नोत्तर उस समय लिया गया जब दिल्ली से उनके महाप्रयाण के उपरान्त वहाँ पर ले आया गया था ।

प्रकाशक
श्री सिद्धगुफा
प्रकाशन
सवाई, आगरा

सम्पादक :
श्री 'दिव्य'

सितम्बर
१९९०

इस अंक में पढ़िये—

★ निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः (प्रार्थना) २
★ क्लेश और उनका मूल अविद्या (विशेष लेख) ३
—ब्रह्मलीन योग-योगेश्वर अनंत श्री चंद्रमोहनजी महाराज
★ मोहन ! कहि न जाय का कहिए ? (सम्पादकीय) ७
★ श्री गुरु-चरणों में समर्पित-श्रद्धा-सुमन ११
—आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा
★ रमता जोगी—बहता पानी १५
—श्री दिव्य
★ अत्रि ऋषि के शिष्यों की कथा १७
—श्री विष्णु प्रसाद व्यास
★ श्रवण और कीर्तन २०
—आचार्य विनोबा
★ वेदादि ज्ञान की महत्ता २४
—श्री दर्शनानन्द
★ पत्रं पुष्पं फलं तोयम्—सूक्तियाँ २६
★ गायब बालक की वापसी २८
—श्री केशव उपाध्याय
★ सत्कार्यवाद का सिद्धान्त तथा प्रकृति ३३
—श्री सुरेन्द्र बहादुर एम० ए०
★ श्रद्धांजलि ३७
—श्री दृष्टिकेतुसिंह ब. अ.
★ उपनिषद्—गुरु वाक्य हैं ३८
—डा० अनिरुद्ध प्रधान
★ जाने कितनी बार मिले हैं (कविता) ४०
★ कर्मकाण्ड एवं योग ४१
—एक योग-साधक
★ जगद्गुरु श्री शंकराचार्य से पालब्रण्टन की भेंट-वार्ता ४५
—डा० विजयसिंह
★ कैसा हो गया कमाल ! ४७
—पं० रामबोध पाण्डेय व्यास, योग आश्रम, लखनऊ
★ परब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप ४८
★ श्रद्धांजलि (कविता) ४९
—ब्र० श्री ओमप्रकाश लखनऊ

वार्षिक मूल्य ४० रुपया। एक अंक का ५ रुपया।

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा ।

वर्ष २३
अङ्क ६

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविशदं योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग:' ।।

सितम्बर
१९९०

निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः

बाञ्छा सज्जनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषि त रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ।।

अर्थात्

सज्जनों की मैत्री की इच्छा, पराये गुणों में प्रीति, गुरु में नम्रता, विद्या में अनुराग, स्त्री में प्रेम, लोकापवाद से डर, शङ्करजी में भक्ति, इन्द्रियों को अपने वश में रखने की शक्ति, दुष्टों की असंगति आदि गुण जिन मनुष्यों में रहते हों उनको नमस्कार है ।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ
प्रसिद्ध मिदं हि महात्मनाम् ।।

अर्थात्

विपत्ति में धीरज, उन्नति में सन्तोष, सभा में चतुरता, युद्ध में वीरता, यशः प्राप्ति में विशेष रुचि, वेदाध्ययन में आसक्ति आदि गुण महात्माओं में स्वभाव से ही रहा करते हैं । —योगी भर्तृहरि

हमारा विशेष लेख :

ब्रह्मलीन योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी
महाराज
संस्थापक :
सिद्धयोग

पूज्यपाद श्री गुरुदेवजी के लेख का अध्ययन-मनन आपको क्लेश-रहित जीवन-साधना की ओर बढ़ाने में सहायक होगा। साथ ही इससे क्लेशों का रूप समझ लेने में आपको सहायता मलेगी। —सम्पादक

क्लेश और उनका मूल अविद्या

मनुष्य सदा क्लेशों से बचकर रहना चाहता है। जीवन का एक क्षण भी क्लेशोंमें न बीते ऐसी इच्छा, उसकी सदा बलवती बनी रहती है। इतना ही नहीं, कि वह केवल इच्छामात्र करके ही चुप बैठकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता हो, अपितु वह क्लेश निवारणके लिए विभिन्न प्रयास भी करता रहता है। दान, तप, जप, पूजा-पाठ, औषध-उपचार, व्यवसाय आदि सबके मूल में उसकी यही चाहना रहती है कि वह सभी प्रकार के कष्टों, क्लेशों और पाप-तापों से बचा रहकर सुख एवं शान्ति से भरा-पूरा जीवन इस धरती पर बिता सके। लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी, उसकी क्लेश रहित जीवन जीने की कामना पूरी नहीं हो पाती। वह सुख और शांति की झोली भरने हेतु घर से निकलता है, किन्तु जा पहुँचता है ऐसे कटीले अरण्य में जहाँ कष्ट, क्लेश और आपदाएँ अनायास आकर उससे टकरा जाती हैं और न चाहते हुए भी उसे उनका प्रतिफल भोगना पड़ता है। क्या कभी आपने सोचा है कि ऐसा क्यों होता है? क्यों और कैसे यह अनचाहे और अन-बुलाये मेहमान मानव के मन-आँगन में आकर अपना आसन जमा लेते हैं?

इसका समाधान करते हैं हमारे धर्म-शास्त्र। जिनका उद्देश्य मानव-जीवन को सुखी, सम्पन्न और निराभय बनाये रखने का दिशा-बोध देना ही रहा है। जो मनुष्य शास्त्रीय दिशा-बोध की उपेक्षा करके मनमाने ढंग से-अशास्त्रीय तौर-तरीकों से अपना जीवन बिताते हैं वे समझ ही नहीं पाते कि जीवन है क्या? क्यों और किसलिए यह मिला है और क्यों उन्हें जीवन में क्लेशों कष्टों का सामना करना पड़ता है?

इस लेखमें जीवनके उद्भव और उसके उद्देश्य की व्यापक चर्चा हम करने नहीं जा रहे। आगे कभी हम इस सम्बन्ध में अपना अभिमत व्यक्त करेंगे। प्रस्तुत लेखमें तो हमारी गवेषणा का विषय केवल इतना ही है कि शास्त्रीय दृष्टि से क्लेश क्या है और क्यों वे अनायास जीवन में आकर उसे क्लेशमय बना डालते हैं।

योग-साधकों के हित में योग-दर्शन के सूत्रकार भगवान पतंजलि के शब्दों में ही इस पर प्रकाश डालना हम अधिक उपयुक्त समझते हैं। वे योग-दर्शन के पाद २ में सूत्र संख्या १२ में बड़ी स्पष्टता से लिखते हैं कि मनुष्य की जीवन-यात्रा में

क्लेशों का मूल कारण उसका अपना कर्माशय ही रहता है। पढ़िए वह सूत्र इस प्रकार है:

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टा दृष्ट जन्म वेदनोयः।

अर्थात् क्लेश ही जिसका मूल है ऐसा कर्माशय दृष्ट और अदृष्ट जन्मों में भोगनीय होता है।

अब विचारणीय बात मात्र यह रह जाती है कि इस 'क्लेश मूलक कर्माशय' से, जो सदा सर्वदा मनुष्य के जन्म-मरण का कारण बना रहता है, कैसे छुटकारा मिले?

लेकिन इससे भी पहले यह जान लेना या समझ लेना भी जरूरी है कि क्लेश क्या हैं, इनका स्वरूप कैसा है और वे कितने हैं। क्यों कि बिना इसके जाने-समझे न क्लेशों से छुटकारा मिल सकेगा, न क्लेशमूलक कर्माशय से।

योग-दर्शन के साधन पाद के आरम्भ में ही भगवान पतंजलिदेव ने क्लेशों का नाम-धेय इस प्रकार किया है—

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः। योग-दर्शन २-३

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और अभिनिवेश, पाँच क्लेश कहे गये हैं।

इस सूत्र पर अपने भावों को व्यक्त करते हुए श्री व्यासदेवजी महाराज ने निम्नाङ्कित पंक्तियाँ लिखी हैं—

क्लेशा इति पञ्च विपर्यया इत्यर्थः। ते स्पन्दमाना गुणाधिकारं दृढयन्ति, परिणाममवस्था पर्यन्ति, कार्यकारण स्रोत उन्नमयन्ति, परस्परानुग्रहयन्त्री भूत्वा कर्मविपाकांचभिनिर्हरन्तीति।

अर्थात् क्लेशों को ही पंचविपर्य नाम से कहा गया है। यह बढ़े हुए क्लेश गुणाधिकार को उत्तरोत्तर दृढ़ करते हुए परिणाम को अवस्थापित करते हैं। कार्यकारण स्रोत को उकसाते हैं और एक-दूसरे के साथ मिलकर के कर्मविपाक को प्रकट करते हैं।

इन पाँचों क्लेशोंमें से प्रथम क्लेश अविद्या है और यह अविद्या ही क्लेशाधिकार की जननी है। नाम रूप की दृष्टि से क्लेश चार प्रकार के रूपकों में रहते हैं—(१) प्रसुप्त, (२) तनु, (३) विच्छिन्न, (४) उदार। इन सभी प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार क्लेशों में अविद्या नामक क्लेश प्रसुप्त है। भगवान पतंजलिदेव ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है—

अविद्या क्षेत्र मुत्तरेषां प्रसुप्त-तनुविच्छिन्नोदाराणाम्। –योग २-४

अर्थात् प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार यह जो क्लेशों के रूपक हैं उनकी जननी केवल मात्र अविद्या ही है। इस सूत्र पर श्री व्यासदेवजी ने अपना जो भाव व्यक्त किया है, वह इस प्रकार है—

अत्राविद्या क्षेत्रम्-प्रसव भूमिः, रुत्तरेषाम्—स्मितादीनां चतुर्विधि कल्पितानां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्, तत्र का प्रसुप्तिः चेतसिशक्तिमात्र प्रतिष्ठनां बीजभावोपगमः। तस्य प्रबोधालम्बने संमुखीभावः प्रस-ख्यानवती दग्धक्लेशबीजस्य संमुखी-भूतेप्यालम्बने नासौ पुनरस्ति, दग्ध-बीजस्य कुतः प्ररोह इति। अतः क्षीण-क्लेशः कुशलश्चरमदेह इत्युच्ते। तत्रैव-

सा दग्धबीजभावा पञ्चमी क्लेशावस्था नान्यत्रेति । सतां क्लेशानां तदां बीजसामर्थ्यं दग्धमिति विषयस्य सुम्मखीभावेऽपि सति न भवत्येषां प्रबोध इत्युक्ता प्रसुप्तिर्दग्धबीजानाम् प्ररोहश्च, तनुत्वमुच्यते, प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति । तथा विच्छिद्य विच्छिद्य तेन तेनात्मना पुनः पुनः समुदाचरन्तीति विच्छिन्नाः कथं ? रागकाले क्रोधस्यादर्शनात्, न हि रागकाले क्रोधः समुदाचरति रागश्च क्वचिद्दृश्यमानो न विषयान्तरे नास्ति । नैकस्यां स्त्रियां चैत्रो रक्त इत्यन्यासु स्त्रीषु विरक्तः किन्तु तत्र रागो लब्धवृत्तिरन्यत्र तु भविष्यद्वृत्तिरिति । स हि तदा प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो भवति ।

विषये यो लब्धवृत्तिः स उदारः । सर्व एवैते क्लेशविषयत्वं प्रत्ययं नातिक्रामन्ति । कस्तर्हि विच्छिन्नः प्रसुप्ततनुरुदारो वा क्लेश इत्युच्यते सत्यमेवैतत् किन्तु विशिष्टानामेवैतेषां विच्छिन्नादित्वम् । यथैव प्रतिपक्षभावनातो निवृत्तस्तथैव स्वव्यञ्जकाञ्जनेनाभिव्यक्त इति । सर्व एवामी क्लेशा अविद्या भेदाः । कस्मात् सर्वेष्वविद्यैवाभिप्लवते । यद विद्ययावस्त्वाकार्यते तदेवयानुशेरते क्लेशा विपर्यास-प्रत्ययकाल उपलभ्यन्ते क्षीयमाणाञ्चाविद्यामनुक्षीयन्त इति ।

अर्थात् क्लेशों की जन्मदात्री—प्रसव भूमि केवल अविद्या ही है। अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश इन शेष क्लेशों की उत्पत्ति अविद्या में ही होती है। इस अविद्या से जन्य अस्मिता, राग, द्वेषादि जितने क्लेश हैं वे सब प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार इन रूपों में बँटे रहते हैं।

क्लेशों की सुप्तावस्था का वर्णन करते हुए भगवान व्यासदेव बतलाते हैं कि प्रसुप्त उसे कहते हैं जिसमें संस्कार बीजमात्र से रहा करते हैं अर्थात् जैसे बीज के अन्दर वृक्ष छुपा रहता है तब तक जब तक कि वह प्रगट नहीं होता। इस रूप में यानी बीजभाव में यह प्रसुप्त है, शक्तिमात्र से कायम है। अभी तक किसी भी प्रकार से वह क्रियाशील नहीं है। उदाहरण के तौर पर इस बात को यों समझ लेना चाहिए कि जैसे वट वृक्ष का बीज प्रथम अणुमात्र होता है जब उसका उद्गम समय आयेगा तब वह बहुत ही लम्बा-चौड़ा विस्तार ले करके दूर तक फैल जायेगा। किन्तु जब तक वह बीजभाव में अवस्थित है तबतक उसका यह प्रसुप्तिकाल रहेगा। प्रसुप्त संस्कार उद्गमकाल सामने आने पर प्रगट हो सकते हैं, किन्तु योगी जिस समय अपनी योग ज्ञानाग्नि के द्वारा ऐसे प्रसुप्त संस्कारों का दहन कर देता है तब वे सब संस्कार दग्धबीज हो जाया करते हैं। जिस समय योगी के संस्कार दग्धबीज हो गये होते हैं तब ऐसी स्थिति पाजाने पर योगीका शरीर अर्थात् देह चरमदेह कहलाया करता है, ऐसा योगी जन्म-मरण के चक्र से बिल्कुल छूट जाया करता है, इसीलिए इसको चरमदेह कहा गया है। इसके अतिरिक्त तनु, विच्छिन्न एवं उदार वृत्तिके संस्कार और रहते हैं, इनमें से साधक किसी एक विषय में रागवान होता है तो वह

दूसरे विषयोंमें विच्छिन्नता एवं तनुत्व धारण कर लेता है।

उदाहरण के लिए इस बात को यों समझ लेना चाहिए कि जैसे किसी साधक का एक विषय के अन्दर राग है, तो इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि बाकी अन्य विषयों में उसका राग है ही नहीं या होगा ही नहीं। ऐसी बात नहीं है। उस समय का वह उसका राग उदार वृत्ति वाला कहलायेगा। किन्तु शेष विषयों में उसकी तनुता या विच्छिन्नता आ जायगी। उदाहरण के लिए इसे भी यों समझ लेना चाहिए कि जैसे कोई कामुक व्यक्ति किसी स्त्री से स्नेह करता है और उसका स्नेह इतनी अधिक मात्रा में बढ़ा हुआ है कि वह उससे एक क्षण भी दूर नहीं रह सकता,तब यह उसका संस्कार उदारवृत्ति वाला संस्कार होगा जो दृढ़तर है। इसी को लब्धवृत्ति संस्कार भी कहते हैं पर इसका भी अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि उस व्यक्ति का प्रेम किसी दूसरी जगह है ही नहीं या होगा ही नहीं। होगा तो अवश्य किन्तु वह गौण होगा। जैसे राग के समय क्रोध दिखलाई नहीं देता। जहाँ क्रोध प्रबल होता है वहाँ राग हल्का पड़ जाता है। इसी तरह जब किसी एक संस्कार का पूर्ण प्रबलता के साथ भुगतान होता है तो उसके अन्य संस्कार हल्के पड़ जाते हैं या विच्छिन्न होजाते हैं। जैसे एक व्यक्ति ने कहीं किसी गाँवमें जन्म लिया, उस समय वहाँ के उसके बन्धु-बान्धव बहुत ही प्रेमी और प्यारे हैं। देखने से मालूम पड़ता है कि इनकी यह प्यार और प्रीति कभी टूटेगी नहीं किन्तु समय आने पर किसी व्यापार के बहाने वही व्यक्ति हजारों मील की दूर जाकर बस जाता है, तब ऐसी दशामें वह उन पुराने मित्र-प्रेमियों को बहुत ही कम याद करता है। अधिक समय हो जाने के बाद तो बिल्कुल भूल ही जाया करता है। इसी बिल्कुल भूल जाने का अर्थ है—विच्छिन्नता और थोड़ा-थोड़ा याद रहने का अर्थ होता है तनुत्व। इन सभी प्रसुप्त तनु, विच्छिन्न एवं उदार संस्कारों की जन्मदात्री होती है अविद्या। इसलिए अविद्या ही सभी क्लेशों की मूलभूता है यानी जननी है। अतः शास्त्रकार परामर्श देते हैं कि पाँचों क्लेशों से छुटकारा पाने के लिए साधक अथवा योगी को अपना प्रधान शत्रु अविद्या को समझ कर उसका नाश सद्गुरु के सानिध्य में रहकर ज्ञान की तीक्ष्ण तलवार से करना चाहिए।

- पथ्यों में सर्वश्रेष्ठ पथ्य काम, क्रोध, शोक, चिन्ता, लोभ, मोह आदि के वश न होना है।
- अपनी शक्ति से अधिक काम करके हार जाना सबसे बड़ा अपथ्य है।
- प्यास के अतियोग को शान्त करने वाले पदार्थों में मिट्टी व मिट्टी के पके ढेले से बुझाया गया पानी सर्वश्रेष्ठ है।
- अपनी पाचन-अग्नि के अनुसार भोजन करना अपनी जाठर अग्नि को तीव्र करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

—चरक संहिता

सम्पादकीय :—

मोहन !

कहि न जाय का कहिए ?

परम श्रद्धेय गुरुवर !

सन् १६६० ईस्वी और उसकी २५-२६ जून की मध्य रात्रि, जिसमें आपने पांचभौतिक कलेवर को त्याग कर अपनी स्वाभाविक कैवल्यावस्था का वरण किया,सिद्धपीठ सवाई और इससे सम्बन्धित भारतवर्ष के विविध प्रदेशों में योग-प्रशिक्षण संस्थाओं के रूप में फैली हुई शाखा-प्रशाखाओं के इतिहास में—और इन सभी से सम्बन्धित हजारों-लाखों गुरु भाई-बहनों के हृदय-स्थलों में—एक ऐसी दर्द-भरी कसकीली रात्रि के रूप में सदा याद की जाती रहेगी, जिसकी कसक, पीड़ा और दर्द की असहनीयता का वर्णन सिवाय सहन करने वालों के और कोई नहीं जान सकता। 'जाके पैर न फटे बिवाई सों को जाने पीर पराई' जैसी दशा हो रही है सवांई से सम्बन्धित आपके अनगिन शिष्य-समुदाय की।

सचमुच आपके सहसा वियोग की यह व्यथा मर्म-वेधी है। इसकी उपचार-विधि भी कोई ऐसी नजर नहीं आ रही है जो इसके उन्मूलन का कारण बन सके।

पूज्यपाद !

आपके श्रीचरणों का वियोग-कभी किसी की कल्पना में भी न आने वाला ऐसा वज्राघात रहा, जिसने सभी को हतप्रभ बना दिया है। जब जिसने भी इस वज्राघात का समाचार सुना वह अवाक् होकर रह गया। कैसे हुआ,क्यों हुआ क्या हुआ ? आदि प्रश्नों का उचित समाधान पाने की तलाश में सभी एक-दूसरे से पूछ-ताछ करने को बेचैन और व्यग्र से दीख पड़ने लगे, विशेषकर वे जिनका कुछ भी संबंध आपके श्रीचरणों से रहा है। ये उत्कण्ठायें विशेष रूपसे इसलिए भी सबके मनमें उठती रहीं कि आपकी अस्वस्थता या आपके रोगाक्रान्त होने का रंचमात्र भी कोई समाचार किसी को विदित नहीं था। प्रतिकूल इसके यह सन्देश आपके ही द्वारा २५ जून से एक-दो दिन पूर्व ही कुछेक शिष्यों और परिचितों को भिजवाये गये थे कि जुलाई के प्रथम सप्ताह में ही आप दिल्ली से सवांई आश्रम पहुँच रहे हैं। स्वयं इन पंक्तियों से लेखक को भी आपके हस्ताक्षरों से युक्त एक पत्र इसी आशय का प्राप्त हुआ था कि'आप ३-४ जौलाई को आश्रम पहुंचजाने का कार्यक्रम बना चुके हैं, वहाँ आकर जरूर मिलना। आश्रम पहुँचकर

विस्तार से बातें करेंगे।' किन्तु दुर्भाग्यवश लेखक को यह सुयोग प्राप्त नहीं हो पाया। इस तिथि से पूर्व ही प्रातः २७ जून के समाचार-पत्रों से यह जानकारी सार्वजनिक हुई कि सुविख्यात परम सिद्धयोगी श्री चन्द्रमोहनजी महाराज संसार में नहीं रहे एवं उनके पार्थिव देह का अन्तिम संस्कार २७ जून के १०-११ बजे हरद्वार में होने जा रहा है। इसी अल्पकालिक अन्तराल में आपका निष्प्राण पार्थिव देह सवांई लाया गया और कुछ घण्टों तक यहाँ रखने के बाद पुनः हरद्वार वापस भी ले जाया गया।

घटनाचक्र के यह सब क्रम इतनी जल्दी-जल्दी बदलते गए कि निकट-वर्ती और सुदूरवर्ती आपके सभी श्रद्धालु शिष्य अधिक से अधिक संख्या में पहुंच कर आपके पार्थिव रूप का अन्तिम दर्शन करके अपने को कृतार्थ नहीं कर पाये। इसके लिए उपयुक्त समय दिल्ली, हरद्वार या सवांई में दे पाना उनके लिए सम्भव नहीं हो पाया, जिन्होंने कि आपकी पार्थिव देह को दिल्ली से सवांई और सवांई से पुनः दिल्ली, हरद्वार तक लाने-ले जाने का दायित्व सम्हाला हुआ था।

आराध्यदेव !

दिल्ली के आवासीय आश्रम में सहसा उदर-पीड़ा से आक्रान्त होकर अस्पताल पहुँचाये जाने के समय से लेकर अन्तिम संस्कार होने तक की घटनाओं का पट-परिवर्तन जिस त्वरित गति से होता चला गया, वह विस्मयकारी और शंकास्पद ही रहा। अनेक निकटस्थ व दूरस्थ शिष्यों और गुरुचरणों के अनन्य प्रेमीजनों को इसका परेखा रहा कि बरफ की सिल्लियों पर यदि आपकी पार्थिव देह को २४ घण्टे और रख लिया गया होता तो ये सहस्रों गुरु-भाई-बहन भी उनके अन्तिम दर्शनों से अपने को उपकृत कर लेते।

प्रभुवर !

हिमालय की चण्डी-नाम्नी उपत्यिका के अँचल में अश्रुपूरित नेत्रों से जिन्होंने आपके निष्प्राण शरीर को भस्मीभूत होते हुए देख पाया, सचमुच वे भाग्यशाली रहे। माँ गंगे ने भी सहसा उमड़कर वातावरण को और उस भू-खण्ड को, जिस पर आपकी चन्दन-चर्चित देह भस्मीभूत बनाने के लिए अग्निदेव को सौंपी गई थी अधिक पावन बना देने के अपने कर्त्तव्य का पालन किया। उपस्थित शिष्य-समूह यह दृश्य देखकर भी आश्चर्य चकित होकर रह गया—जब अग्निदेव के स्वरूप में लीन होते-होते आपका दाहिना हाथ आशीर्वादात्मक मुद्रा में सहसा ऊपर आकर दिखाई देने लगा। शोकपूर्ण वातावरण की नीरवता में किसी ने दर्शकों के कानों में चुपके से आकर कहा—श्री गुरुदेवजी चलते-चलते सबको आशीर्वाद दे रहे हैं, शायद सांकेतिक रूप में वे यही कह रहे हैं—

खुश रहो, प्रसन्न रहो, आनन्दित रहो मेरे प्यारे बच्चो !

भरे हुए हृदय से सभी ने जो आपकी अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने का सुयोग पा सके, धीरे-धीरे वे सभी उस सिद्धपीठ चण्डी उपत्यिका की तलहटी से चलने और बिखरने लगे। श्मशान-वैराग्य के रूप में योगिराज भर्तृहरि का यह श्लोक सभी की चित्त भूमि पर उत्कीर्ण-सा होता हुआ प्रतीत हो रहा था :

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको,
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ।
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्द्वाविवाक्षौ,
कालः काल्या भुवनफलके क्रीड्ति प्राणशारैः ।।

अर्थात्

जहाँ अनेक थे, आज वहाँ एक दिखाई दे रहा है। जहाँ एक था, वहाँ अनेक दिखाई दे रहे हैं और अन्त में एक भी नहीं रह जाता है। इस तरह रात और दिन रूप दो पासों को फेंकता हुआ यह कालपुरुष अपनी स्त्री कालीके साथ प्राणों का पासा बनाकर संसाररूपी चौपड़ खेल रहा है।

परम श्रद्धेय !

यह भी बताया गया है कि आपकी अन्तिम इच्छा भी यही थी कि जब प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, पूज्यपाद देवरहा बाबा और आचार्य श्रीराम शर्मा जैसे समकालीन सन्त नहीं रहे, तब आप भी यहाँ अधिक रहने की इच्छा नहीं रखते। 'समाचार-पत्रोंमें कुछ ऐसा ही छपवाया गया। पर आप जैसे सिद्ध-पुरुष जिनका आगमन ही योग-धर्म के प्रचार व प्रसार द्वारा **लोक-कल्याण के लिए हुआ** हो, ऐसा सोचेंगे बुद्धिगम्य नहीं लगता। जगत से विरत और उदासीन होकर सहसा बिना **किसी** को भी कोई संकेत दिये चुपचाप निराशमना हो अनन्त की यात्रा पर आप चल पड़ेंगे, इस पर भी **विश्वास वे नहीं कर सकते, जिन्हें** आपके जीवट और शौर्य भरे जीवन का कुछ भी परिचय है। आपके सामने आश्रम-भवनों के निर्माण की और योग महाविद्यालय आदि स्थापित करने की अनेक ऐसी योजनायें थीं, जिन्हें पूरा करने के लिए आप कृत-संकल्प थे। आश्रम पर पावसकालीन रुद्र-यज्ञ के आयोजनार्थ भी सदा की भाँति आप पंडित मण्डली को आमन्त्रित करने की पूर्व तैय्यारियों में व्यस्त थे, तब यह कैसे समझा जा सकता है कि जीवन से आप उदासीन होकर स्वेच्छा से अनन्त लोक की यात्रा पर चल पड़ेंगे, जीवन और मृत्यु का निरन्तर चलने वाला चक्र तो

काल-क्रीड़ा का प्रमुख अंग होता है, यह तथ्य आप प्रायः अपने प्रवचनों में बताया ही करते थे। ऐसी दशा में यह तर्क भी समझ में समाने वाला नहीं है कि कतिपय मनीषियों की मृत्यु ने आप जैसे स्थित प्रज्ञ सिद्ध योगी के चित्त को अव्यवस्थित बना डाला हो।

योगयोगेश्वर !

इस स्थिति में दिल्ली में आपके सहसा अस्वस्थ हो जाने से लेकर चण्डी में हुए अन्तिम संस्कार तक का सम्पूर्ण घटनाक्रम आपके बहु-संख्यक शिष्यों की इस आशंका का समर्थन करता हुआ ही प्रतीत होता है कि आपके द्वारा की गई अनन्त लोक की यात्रा के पीछे सहज ज्ञात न हो सकने वाले कुछ कूटनीतिपूर्ण तथ्य हैं, जिनकी निष्पक्ष छानबीन होना अति आवश्यक है। पूज्य गुरुदेव के चरणों में अनुराग एवं निष्ठा रखने वाले योग-प्रेमी साधकों में से तीन-चार सदस्यीय समिति, जो अपनी उज्ज्वल चरित्र वाली छवि के लिए प्रसिद्ध हो, निर्माण या मनोनीत का जानी चाहिए जो इस सम्बन्ध में पैदा हुई आशंकाओं का ठीक-ठीक पता लगाकर उनका निराकरण कर सके। ऐसा होना इसलिए भी आवश्यक है कि किसी निर्दोषी को हम व्यर्थ ही दोषी न मानलें और अगर कोई दोषी है तो उसे निर्दोषी मानकर पूजनीय न बना डालें।

इधर ब्रह्मलीन हो चुके गुरुदेवजी की सहोदरा परम-पूज्या योगिनी कौशल्यादेवी ने आश्रम की व्यवस्था और संचालन का भार गत १४ अगस्त से सम्हाल लिया है। अतः गुरुदेव जी के निधन के कारणों की छानबीन करने वाली समिति के सदस्यों का चयन उनके परामर्श से किया जाना भी सम्भव हो सकेगा, इसमें किसी को कोई आपत्ति भी नहीं होनी चाहिए। ऐसा हमारा अपना निवेदन है।

गुरुपूर्णिमा के अवसर पर आश्रम पर आए हुए बहुसंख्यक ऐसे गुरु भाई-बहिन भी थे जिन्हें आपके परमधाम जाने का समाचार आश्रम पहुँचने पर ही मालूम हो सका था। पूजन और अर्चना के लिए जब वे आपके नियत आसन के समीप पहुँच पाते तब उनकी आँखें आपको न पाकर सजल होकर रह जाती थीं। वे सभी गद्‌गद् कण्ठ से यह विलाप मन ही मन गुनगुनाने लगते थे।

प्रिय बोलो वह हमारा नयनतारा कहाँ है ?
हम दुःख जलनिधि डूबों का सहारा कहाँ है ?
वो हृदय हमारा नयनतारा कहाँ है ?
बोलो वह प्यारा मनमोहन हमारा कहाँ है ?

—सम्पादक

● आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गुरु-चरणों में समर्पित श्रद्धा-सुमन

पढ़िए आचार्य चन्द्रहास शर्मा की यह श्रद्धांजलि, जिसमें उन्होंने न केवल अपनी अपितु अपने जैसे व्यथित बहुसंख्यक साधकों की अन्तर भावना का सजीव-सा चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। —सम्पादक

मेरे प्राणों के स्पन्दन, गुरुदेव !

सात जौलाई, १९९० के गुरु-पूर्णिमा के पावन पर्व पर 'सिद्धपीठ' श्री सिद्ध-गुफा (सवाई, जिला आगरा) के सिद्ध-साधक एवं तपस्वी महात्माओं द्वारा सेवित विशाल पुनीत प्रांगण में आपके सहस्रों साधक बच्चे हृदयमें गंगा-सा पवित्र श्रद्धा एवं समर्पण का भाव लिये और अश्रु-पूरित नयनों में यमुना जैसा प्रवाह लिये आपके दिव्य सिंहासन की ओर पूजा का प्रसाद और पुष्पहार लिये 'पूजामूलं गुरोर्पदम्' कथन को साकार करने के लिए श्रद्धावनत होकर शनैः-शनैः आगे बढ़ रहे हैं। आश्रमके कण-कणमें आपका निश्छल नैसर्गिक माता-पिता से भी बहुत अधिक वात्सल्य प्रेम छलकता-सा प्रतिपल प्रतीत हो रहा है। 'लल्ला आओ'—यह ललित मधुर स्वर कानोंमें गूँज रहा है। आपके श्रीचरणों में बैठने पर प्राप्त होने वाली असीम शान्ति आलिंगन कर रही है। आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलालजी महाराज की मधुर-मनोहर झांकी मन को 'उन्मनि अवस्था' तथा 'अमनस्क योग' की अनुभूति करा रही है। मेरा गर्वीला मस्तक अपने समस्त अज्ञान के साथ, मन के साथ और हृदय के साथ सर्वात्मना आपके श्रीचरणों में समर्पित होकर आनन्द के अथाह सागर में निमज्जित हो रहा है। किन्तु कुछ क्षण बाद जब 'वृत्ति सारूप्य' होकर बाह्य संवेदना की अवस्था लौटती है तो मैं क्या देखता हूँ कि मेरे दोनों हाथ आपको माल्यार्पण करने के उद्देश्य से शून्य में उठे हुए हैं। आपका स्थूल पाञ्च-भौतिक शरीर देखने की इच्छा होते ही हृदय से असह्य टीस और मर्मान्तिक वेदना उठती है और मैं पुनः कुछ देर को संज्ञाहीन हो जाता हूँ। जैसे-तैसे सम्हालने की सफल कोशिश करता हूँ। २७ जून, हरिद्वार में चण्डी-पर्वत की उपत्यका में 'सुरसरि की नील-धारा' के उपकूल पर आपके पार्थिव शरीर का अन्तिम संस्कार और ?ापावनी गंगा का अकस्मात् कई फुट ऊँचा उठकर आपके चरण-कमल-वन्दन का अविस्मरणीय दृश्य स्मृति पटल पर घटा बनकर छा जाता है। मैं अपने को अनाथ, असहाय, लुटा-सा संसार-सागर में साधना की केवट-विहीन नौका में बैठा अकिंचन और अकेला पाता हूँ। फिर लगता है अतीत की पुण्यमयी दिव्य आनन्द भरी स्मृतियों की कुम्हलाई कलियों की वन्दनवार बनाने, जिसने अपने जीवन सर्वस्व का अर्चन कर सकूँ।

अतीत के अनुभव हे गुरुवर! मुझे आपसे एक क्षण भी अलग नहीं होने देते। यह एक विचित्र विडम्बना है कि पहले आप बुलाते रहते थे। 'कुछ समय लल्ला! हमारे पास रह लिया करो।' तीर्थराज प्रयाग के संगम पर आपने अपार प्रसन्नता के क्षण कहा था—'एक माह यहाँ मेरे साथ रह जाओ लल्ला!

तुम्हें परिपूर्ण कर दूँगा।' आप पकड़ते थे और मैं कोई न कोई बहाना तलाशकर आपसे दूर भागता था। अब आप देखते-देखते अपने नित्य स्वरूप में अखण्ड-मण्डलाकार व्याप्त तेज रूप में विलीन हो गये। अब मेरा मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार आपको हर क्षण अपने हृदय-कमल में स्थान देने को विकल हो रहा है। 'निवसतुमयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्य दृष्टिः'। इस भावना को आपकी करुण-कृपा से सार्थक करने को मैं हरक्षण बेचैन बना हूँ।

हे योगेश्वर! हे सर्वेश्वर! आप 'कर्त्तुं म कर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं म' में पूर्ण समर्थ सिद्ध हैं। मैं आपको अब भी अपनी श्वासों में अनुभव करता हूँ। इसीलिए आपको वर्तमान मानकर आपकी दी हुई कृपा-राशि की अमूल्य वस्तु का आनन्द लेता रहता हूँ। फिर कैसे कहूँ कि आप नहीं रहे। आप स्थूल देह की सीमाओं को पार कर केवल रूप से शायद पहले जैसे नहीं रहे। किन्तु नाम से आप सर्वनाम बन गये। यद्यपि श्रुति भगवती ऐसा कह रही है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं,
गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः,
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।
—मुण्डकोपनिषद

'जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपने नाम रूप का परित्याग करके समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार विद्वान पुरुष भी नाम रूप से विमुक्त होकर परात्पर चिन्मय परम-पुरुष को प्राप्त होते हैं। आपका नाम और रूप दोनों ही ध्यानगम्य बनकर प्रत्येक साधक बच्चे का पाथेय बन गये हैं। अतः हम आपके नाम और रूप को सगुण और निर्गुण उभयात्मक मानते हैं।

हे गुरुवर! आप जैसा संसार में कहीं और दिखाई नहीं पड़ता। सर्वसमर्थ होते हुए भी सरल, मधुर, क्षमाशीलता की साकार मूर्ति! दया के अथाह सागर! करुणा के सघन कानन! कृपा के सिन्धु! शक्तिपात द्वारा पतितों को पङ्क्ति पावन बनाकर चित्-शक्ति के विलास का माध्यम बनाने वाले सदाशिव! युग-युग से सोई हुई कुण्डलिनी शक्ति आपके करुणापूर्ण लास, विलास और उल्लास से तुरन्त जगकर साधकों के अन्तर्जगत को आलोकित करने लग पड़ती। आपके कृपा-कटाक्ष मात्रसे अनेकों साधकों के प्राण चित्तवृत्ति निरोध की योग-भूमिका पर आरूढ़ होने के लिए भस्त्रिका प्राणायाम (सिद्ध-प्राणायाम) करने लग जाते। आपकी अनुकम्पा का कोई पारावार नहीं। अनेकों साधकोंको अष्टविध प्राणायाम, बन्ध, मुद्रायें खेचरी-शाम्भवी, अमरोली, सहजोली तथा चित्त-निर्माण जैसी एकांतिक-कठोर साधनायें अनायास ही सहज ढंग से होने लगतीं। वैसे कोई अपना एक जन्म पूरा लगा दे तो भी शायद सम्भव नहीं।

हे जीवनधन! आपकी असीम अनुकम्पा से अनेकों साधक अन्तर्जगत में प्रवेश कर समस्त देवी-देवताओं के दर्शन कर दिव्य-शक्तियों के आगार बन गये। न जाने कितने आसुरी सम्पत्ति के धनी-मानी दैवीय सम्पत्ति के निधान बनकर जीवन को कृतार्थ कर गये। आपकी कृपा-वृष्टि से जीवन का सुलगता दावानल शान्त तपोवन में परिणत हो गया। आप जन-जन के प्राणाधार बन गये। आपके श्रीचरणों में कैसा भी दुष्टात्मा क्यों न आया हो आपने उसे सदा दिव्य प्रेमरस की वृष्टि से आप्लावित किया। आपकी दीक्षा-विधि अत्यन्त सरल एवं सर्व सुलभ थी।

हे योग-योगेश्वर ! आपने महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज (अपने गुरुदेव) की शिक्षाओं को आज्ञाओं को अपने श्वास-प्रश्वास में धारण कर कठिन से कठिन परिस्थिति में भी अपने सुखों की तिलाञ्जलि देकर सदा आज्ञाओं का निर्वाह किया। घूम-घूमकर रात-दिन रेलगाड़ी की साधारण श्रेणी के डिब्बे में सफर करते हुए योग-प्रचार के कार्य को एक सैनिककी तरह जीवनपर्यन्त चलाया, जैसे प्यासा कुएँ के पास जाता है, किन्तु आपने कुआँ ही प्यासे के पास पहुँचा दिया। आप अष्टांग योग के सर्वांग परिपूर्ण सिद्ध एवं प्रसिद्ध महात्मा हैं। इस तन-मन मलित कलिकाल में अपने संस्कारी बच्चों को कर्म-चक्र के जंजाल से मुक्त करने के लिए आपने सिद्धलोक से इस अवनि-मण्डल पर आकर अहर्निश योग-मार्ग का उपदेश योग-क्रियाओं द्वारा साध्य-असाध्य रोगों की निवृत्ति तथा अपने पुण्य-प्रसाद द्वारा असम्भव को भी सम्भव बना दिया। ऐसा अवढरदानी कहाँ मिलेगा। आपने मृतकों को जीवनदान दिया, मूकों को वाणी दी और अन्धों को नेत्र-ज्योति दी। आपकी अलौकिक कृपाओं को देखकर कौन आपके चरण-कमलों में अपना शीश नहीं झुका देगा ?

हे गुरुदेव ! आप अज्ञान तिमिरान्ध को नष्ट करने वाले सूर्य हैं। शास्त्रों में गुरु-शब्द की जो व्याख्या और परिभाषा की है, वह अक्षरशः आपके दिव्य स्वरूप में अन्वर्थ है। यथा—

आचार्यो वेद सम्पन्नो,
विष्णुभक्तो विमत्सरः।
योगज्ञो, योगनिष्ठश्च,
सदा योगात्मको शुचिः ।।
गुरुभक्ति समायुक्तः
पुरुषज्ञो विशेषतः।
एवं लक्षण सम्पन्नो,
गुरुरित्यभिधीयते ।।

आपकी पवित्रता, गुरुभक्ति, शास्त्र-सम्मत आचार-विचार, शास्त्रज्ञान तथा योग-सिद्धि सभी कुछ अद्वितीय हैं। सर्व समर्थ तथा सब कुछ करके भी आप सदा अकर्ता बने रहते। हमेशा यही कहते—'श्री प्रभुजी की कृपा से ऐसा हो गया।' राज-सत्ता परिवर्तन के लिए आपने अपना अमोघ आशीर्वाद प्रदान कर समय-समय पर अपने बच्चों को सदा श्रेय दिया। आपका दरबार दीन-दुःखियों के लिए हरक्षण खुला रहता। वहाँ धनी-निर्धन या उच्च पदासीन या सामान्य-जन इसका कोई कोई भेद-भाव नहीं रहा। जैसा जिसका भाव और प्रेम उसी के अनुसार वह कृपा का अधिकारी बना—

जाके हृदय भगति जस प्रीती।
प्रभु तहँ प्रकटत सदा तेहि रीती ।।

हे शिव-शङ्कर भोले ! आप काल-चक्र, युग-चक्र तथा कर्म-चक्र को एक साथ घुमाने वाले आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र के उपासक बनकर भी विषपायी शङ्कर बन गये। अठारह वर्ष पूर्व आपको किसी प्रिय शिष्य या शिष्या ने काँच खिलाया था। वाह ! क्षमा के अवतार ! आपने उस अपराधी को पूर्ण सुरक्षा में उसके घर जाने दिया। इतना ही नहीं, समय-समय पर उसकी आर्थिक व आध्यात्मिक सहायता भी करते रहे। उसके जघन्य कृत्य के लिए उस पर तनिक भी क्रोध नहीं। साधारण मानव प्रतिरोध की अग्नि में रात-दिन जलता है और जब तक प्रतिशोध नहीं ले लेता उसे चैन नहीं होता। पर आप प्रलयङ्कर शङ्कर न बनकर नीलकण्ठ स्वयं बन गये।

जिस प्रकार गाय के अमृतोपम मधुर दुग्ध का पान गोसेवक एवं उसके वत्स (बछड़ा)

करते हैं, किन्तु उसके थनों के अत्यन्त समीप रहने वाले कीड़े सदा उसका खून ही पीते हैं। उसकी प्रकार आपके दूरस्थ शिष्य आपकी कृपा के अमृत से कृतकृत्य होते रहे, किन्तु आपके पास शिवजी के गणों की भी कमी नहीं रही। उनमें से कुछ तो ऐसे भी रहे जो सदा गाय के थन पर लगे कीड़े की तरह आपका रक्त पीनेमें ही लगे रहे, किन्तु आपने दाता बनकर जिसने जो चाहा उसे वही दिया आप अपने श्रीमुखसे प्रवचनोंमें समझाया करते थे कि योगी समाधि में बैठकर अपने अशेष संस्कार काट सकता है, किन्तु बहादुर वह है जो संस्कारों को काटने की अपेक्षा उनका भुगतान कर उन्हें निःशेष करे, आपने ऐसा ही किया। आप कभी संस्कार बनने नहीं देते थे। अपने को सदा कर्त्ताभाव से मुक्त रखते। यदि कोई अपने मन से कुछ करने की बात कहता तो कह दिया करते 'हाँ लल्ला! यदि तुम चाहते हो तो करलो।' किन्तु जो गुरु-मुख हो गये, उनके कर्म संस्कार का सारा निर्वाह स्वयं ही किया करते। उसके मन की कभी नहीं होने देते। कई शिष्य ऐसे देखे जो यह शिकायत करते हैं कि महाराजजी हमारी अमुकइच्छा को पूर्ण ही नहीं होने देते। लाख कोशिश करने पर भी सफलता नहीं मिलती, होता वही है महाराजजी जो चाहते हैं। आप अलौकिक पुरुषोत्तम होकर भी लोक-व्यवहार को लौकिक पुरुषों की भाँति बड़ी चतुरता से निभाते थे। अपने बच्चों को सदा कहा करते कि समुद्र भी पीकर ओष्ठ सूखे रखने वाला शक्तिको सम्हाल कर रख सकता है। वास्तव में आपके जीवन का प्रत्येक क्रिया-कलाप इस शिक्षा का स्वयं आदर्श मूर्त्तरूप था। आप सरल-सादे धोती-कुर्ते के वेश में योग की समस्त विभूतियों को छिपाये हुए थे। कभी-कभी उपयुक्त पात्र और परिस्थिति के अनुसार किसी योग-विभूति का परिचय दे दिया करते। जैसे ही साधक को किसी योग-ऐश्वर्य का अनुभव हुआ, तुरन्त एक पर्दा डालकर साधक को भ्रमित कर स्वयं को छिपा लेते। न जाने आपने कितने बार विष के संस्कार का भुगतान किया। इसे अनिच्छा की इच्छा कहें या नियति की क्रूरता या आपकी महानता या मायाकी दुष्टता जैसा कि संत कबीर ने कहा भी है—

माया महा ठगिनि हम जानी।
त्रिगुण फाँस लिए कर डोलै,
बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला होइ बैठी,
शिव के भवन भवानी[1]।
भक्तन की भक्ति न होइ बैठी,
ब्रह्मा के घर ब्रह्माणी॥
कहत कबीर सुनो भई साधो,
सब सच अकथ कहानी॥

जिसने आपके पंच-भौतिक शरीर को अखंड-मण्डलाकार व्याप्त तेज में अपनी कुटिलता के माध्यम से विलीन कर सभी को शोक-सागर में निमग्न कर दिया। सम्पत्ति की लिप्सा सभी प्रकार के अनर्थों की जननी है। स्वार्थान्धों ने आपको न चाहकर आपकी सम्पत्ति को ही चाहा। आप गरल पान कर अमृत बन गये और हम लोग आपके द्वारा अमृतपान करके भी मृत्यु के द्वारा छले गये।

आपके श्रीचरणों का अर्चन अपने श्वांसों की धूप और प्राणों के दीप से मैं सदा करता रहूँ। अपने शीश का नारियल सदा आपके चरण-कमलों में अर्पित कर सकूँ और आपके स्वरूप की सदा स्मृति-परिक्रमा कर सकूँ। ऐसी हे गुरुदेव! शक्ति दें और भक्ति दें। मेरे मलिन मन-मन्दिर में आप अपना पवित्र आसन स्थापित कर इसे दिव्य दिव्य बनायें। यह प्रार्थना स्वीकार करें, यही है मेरी अपनी श्रद्धाञ्जलि!

१ भवानी का अपर नाम=उमा भी है।

रमता जोगी —— बहता पानी

रमता जोगी, बहता पानी, दोनों की उद्घोषित वानी।
'चलने से जो रुक जाता है, कीचड़ बन जाता वह पानी'! —दिव्य

प्रजापति का एक अक्षरीय उपदेश

योगी 'रमता राम' सदा नदियों के किनारे पर ही चलकर अपनी जीवन-यात्रा चलाया करते थे। कभी किसी नदीके दांये किनारे पर चलते तो कभी किसी के बांये किनारे पर चलते नजर आते थे। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक यह अपने चलने का क्रम जारी रखते थे। संध्या होने पर यह रात्रि विश्राम के लिए कहीं नदी के किनारे बसे हुए किसी गाँव में ठहर जाते और प्रातःकाल फिर चलना शुरू कर देते थे। रात्रिकालीन विश्राम में वे अपने समीप आने वाले भक्त-समुदाय को उपदेश सुनाकर अनुग्रहीत किया करते थे।

× × × ×

एक दिन एक गाँव में जब उनके विश्राम-स्थल पर सत्संग चल रहा था, तब उन्होंने लोगों से पूछा कि बच्चो! क्या तुम्हें मालूम है कि दुनिया का सबसे छोटा एक अक्षरीय उपदेश किसने दिया था, कब दिया था और वह क्या है? लोगों ने सामूहिक रूप से अपना उत्तर देते हुए कहा कि महाराज! हमें इसके बारे में कोई भी जानकारी नहीं है। यदि आप ही कुछ बता सकें तो कृपा होगी।

× × × ×

योगी 'रमताराम' बोले। श्रोताओ! सावधान होकर सुनो। मैं तुम्हें संसार के सबसे लघुत्तम एक अक्षरीय उपदेश का परिचय दे रहा हूँ। इसे प्रजापति ने सृष्टि के आरम्भ में सबसे पहले अपनी प्यारी प्रजा को दिया था। द द द यही उनका संक्षिप्त-सा उपदेश है। उपनिषद् के ऋषियों का कथन है कि प्रजापति के तीन संतान-समूह थे। देव, मानव और दानव। जब यह धरती पर आने लगे तब उन्होंने प्रजापति से निवेदन किया कि प्रभुवर आप हमें उपदेश दीजिए। तबप्रजापति ने उनके कानमें कहा 'द'। वे सुनकर चलने लगे, तब प्रजापति ने कहा, क्या समझे? देव-समूह ने कहा, दमन करो, ऐसा हम समझ पाये हैं। प्रजापति ने कहा—हाँ, तुम ठीक समझे, जाओ!

× × × ×

उनके जाने पर प्रजापति ने मानव समूह को अपने पास बुलाया और उनके कान में भी 'द' अक्षर कह सुनाया। वे चलने लगे तो उनसे भी प्रजापति ने पूछा—क्या समझे?

मनुष्य-समूह ने उत्तर दिया, हाँ हम समझ गये। 'हम दान करें' ऐसा अर्थ हम समझ पाये हैं। प्रजापति ने कहा—तुम भी ठीक समझे, जाओ।

× × × ×

इसके पश्चात् दानव समूह प्रजापति के समीप आया। उसके कान में भी प्रजापति ने 'द' कहकर अपना उपदेश समाप्त किया और कहा, तुम जाओ। जब वे चलने लगे तो प्रजापति ने उनसे भी पूछा क्या समझे तुम। उन्होंने कहा कि हम समझ गये महाराज। दया करो। इसका ऐसा उपदेश आपने हमें दिया है। हाँ हाँ, तुम भी ठीक समझे, प्रजापति बोले। प्रजापति ने तीनों समूहों को सम्बोधित करते हुए आगे फिर कहा—देखो आकाश में छाये हुए बादल भी द द द कह कर दड़दड़ाते हैं। वे मेरी इस देव-वाणी का ही गान करते हैं कि दमन करो, दान करो और दया करो। यही तीन लघुत्तम एक अक्षरीय उपदेश हैं। जिसके ऊपर तुम्हारे सुखी जीवन का तानाबाना बुना जा सकता है।

(१) दमन करो अपनी वासनाओं और इन्द्रियों का।

(२) दान करो धर्म से अर्जित किये हुए अपने धन का। और

(३) दया करो संसार के पीड़ित आर्त जनों पर।

यही एक अक्षरीय उपदेश मेरा है, जिसे तुम सबको जीवन में उतरना चाहिए।

× × × ×

प्रजापति ने अपने इन तीनों पुत्र समूहों को समझाते हुए फिर कहा, देखो! तुम सब एक ही पिता की संतान हो। किन्तु अपनी-अपनी वृत्तियों और गुण-विशेष के कारण ही तुम देव, मनुज और दनुज इन तीन भागों में बँट गये हो। देवता बनने के लिए मनुजों को अपनी इन्द्रियों का दमन करना आवश्यक रहता है। बिना इन्द्रिय दमन और संयम के देवत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती और मनुज सही अर्थों में तुम तभी कहला सकते हो जब दान की वृत्ति द्वारा तुम समाज-कल्याण के कार्य में रत रहो। मनुज से नीचे तुम दानव या दनुज की श्रेणी में न पहुंच जाओ, इसलिए तुम्हें क्रूर और हिंसक वृत्तियों का त्याग करके दया का भाव सदा अपने हृदय में जमाये रखना चाहिए। सभी तथास्तु कहकर वहाँ से धरती की ओर चले गए।

- मन ही मनुष्य के बन्धन तथा मोक्ष के लिए कारण है। विषयासक्त मन बन्धन का तथा निर्विषय मन मुक्ति का कारण बनता है। ऐसा कहा गया है।
- विषय के संग का निराकरण कर, मन को हृदय में अच्छी तरह बन्द करने से (वह मन) उन्मनी अवस्था को जाता है। (और) तब वह परमपद (प्राप्त) होता है।
- (वह परमपद) न चिन्त्य है, न अचिन्त्य। (वैसे ही) वह चिन्त्य भी है और अचिन्त्य भी है (ऐसा अनुभव आता है) तब पक्षपातमुक्त (तटस्थ) ब्रह्म प्राप्त होता है।

—ब्रह्मबिदुपनिषद

अत्रि ऋषि के शिष्यों की कथा

● श्री विष्णुप्रसाद व्यास

पूर्व काल में पतितपावनी भागीरथी के तट पर एक पर्ण कुटी में अत्रि नाम के एक पवित्र ऋषि रहते थे। सांसारिक पदार्थों में उनको बिल्कुल मोह न था। वे ऋषि बड़े ब्रह्मवेत्ता थे। समदर्शी, निर्विकारी और जीवनमुक्त की तरह इस जगत में ये मुनि विचरते थे, इन मुनि की सेवा में परम पवित्र सत् के ज्ञाता, गुरु वचन पर परम आस्थावान् और गुरु की भाँति ही निर्विकार ऐसे चार शिष्य थे–उनके नाम कंदर्पहर, मन्युहर, मोहहर तथा भयहर थे, ये चार शिष्य सदा गुरु सुश्रुषा में तत्पर रहते थे, जैसे मुनि आत्मनिष्ठ थे, वैसे ही शिष्य भी अपने-अपने बल के अनुसार आत्मनिष्ठ थे। चारों बालब्रह्मचारी थे, इन चारों में से किसी शिष्य को भी संसार की माया से सम्बन्ध नहीं था, गुरु-भक्ति में चारों एक दूसरे की स्पर्धा करते थे—अत्रि मुनि को भी चारों पुर समान प्रीति थी।

शिष्यों की कसौटी

मुनि को एक समय इच्छा हुई कि चारों शिष्यों में श्रेष्ठ कौनसा है इसकी परीक्षा करें, यह परीक्षा करने के लिए एक चातुर्मास प्रारम्भ के पूर्व मुनिदेव अपनी पर्ण कुटी से किसी स्थल पर विश्राम करने को यात्रा के लिये निकल पड़े, चलते-चलते वे राजा जनक की विदेह नगरी में जा पहुँचे। चातुर्मास का प्रारम्भ था, मुनि ने चारों शिष्यों को बुलाकर कहा—"हे परम पवित्र नैष्ठिक ज्ञानी शिष्यो! इस चातुर्मास को यहीं व्यतीत करना मैंने निश्चय किया है, इससे तुम सब किसी दूसरे स्थान पर जाकर निवास करो," तब उन शिष्यों ने कहा—"हे गुरुदेव! आप जहाँ जाने की आज्ञा करेंगे, वहीं जाकर हम निवास करेंगे।" क्षण भर विचार करके मुनि महाराज ने भयहर से कहा—"वत्स भयहर! तू इस नगर की पूर्व दिशा में जो पर्वत है उस पर जा। इस पर्वत की दूसरी श्रेणी पर जो बाघ की मांद है, उसके मुख के आगे तू चार मास बैठा रह, चातुर्मास पूरा होने पर वापस आ जा।"

फिर दूसरे शिष्य मोहहर को आज्ञा दी–"तू नगर के मुख्य पनघट पर जाकर चार महीना बैठा रह।" तीसरे शिष्य मन्युहर से कहा—"इस नगर के पश्चिम की ओर वन में एक पीपल के जड़ के पास सर्प की बाँबी है वहाँ जाकर तू बैठा रह।" चौथे शिष्य कंदर्पहर को आज्ञा दी कि "तू विदेह नगर की परम रूपवती, लावण्य की मूर्ति, मोहमद से भरी हुई राजगणिका पिंगला के घर जाकर निवास कर।"

बाघ की मांद में वास

"इस प्रकार गुरु ने आज्ञा दी, तब चारों शिष्य आज्ञा किये हुए स्थानों की ओर विदा हुए।

भयहर, पर्वत पर बनी हुई बाघ की मांद के आगे जा बैठा। इस गुफा में रहने वाला बाघ मनुष्य भक्षक था। मनुष्य की गंध आते ही वह बाघ मांद में से बाहर निकला और चारों ओर दृष्टिपात करके भयहर को देखते ही एकदम दहाड़ने लगा और (खाऊँ खाऊँ) करता हुआ गुफा से बाहर आकर भयहर की ओर विकराल दृष्टि करके छाप (पंजा) मारने को तैयार हो गया, परन्तु भयहर तो भय का जीतने वाला था अतएव बाघ की विकराल गर्जना सुनने पर भी उसे कुछ भी क्षोभ न हुआ, बल्कि बाघ की ओर पीठ कर निर्भय अचल खड़ा रहा। भयहर तो भयहर ही था, भय को तो वह जानता ही न था। उसकी आत्मनिष्ठा प्रबल थी, इस कारण उसने भय को जीत लिया था। उसने विचारा कि "आत्मा अजर-अमर है, अविनाशी है, उसे बाघ खा नहीं सकता, तलवार से वह कटता नहीं, तब यह हिंसक प्राणी किसको खायेगा?

हिंसक प्राणियों का नियम होता है कि वे जहाँ तक हो सके पीठ पर घाव करते हैं, क्योंकि ऐसा करने में उन्हें श्रम कम करना पड़ता है और शिकार सहज ही वश में हो जाता है, परन्तु जब सामने खड़े हुए भयहर को पीठ किये हुए खड़ा देखा तब वह बाघ आश्चर्य मानकर चकित हो क्षण भर ठहर गया। वह भी मर्द था, इस कारण पीठ पर घाव न करके सामने गया। भयहर ने फिर मुँह फेर लिया। तब बाघ फिर उसके सामने की ओर गया।

इस प्रकार भयहर ने चारों दिशाओं की ओर मुँह फेरा और चारों दिशाओं में बाघ भी फिरा। फिर वह भय का हरने वाला "भयहर" खड़ा रह गया, तब बाघ भी खड़ा रह गया। इतने में बाघिन आई और बाघ के समीप गुर्रा कर खड़ी हो गयी, दोनों झपट मारने के लिये छटपटा रहे थे।

परगुरु-प्रताप से प्राप्त हुई योग-विद्या के प्रताप से भयहर ने शान्तिपूर्वक धीरे-धीरे इस मांसाहारी बाघ पर त्राटक (एक दृष्टि) करना आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों भयहर की दृष्टि उस बाघ-बाघिन की दृष्टि के साथ एकतार होती गई। त्यों-त्यों उनकी विकराल वृत्ति मन्द पड़ती गई। थोड़ी ही देर में जो बाघ-बाघिन मनुष्य को देखते ही तत्काल प्राण लेने के लिए विकराल रूप हो जाते थे, भयहर की दृष्टिसे शान्त होकर उस महात्मा पुरुषको प्रणाम करते हुए उसके समीप आकर उसके चरण-कमल पर लोटने लगे। थोड़ी देर में वे बाघ-बाघिनको उपदेश करने लगा—"हे शार्दूलो! तुमने जो अघोर पाप किये हैं, उनका तुमको कुछ भान-ज्ञान है? विचार है? स्मरण है? इन सब कर्मों का फल तुमको भोगना ही होगा, फिर अब नवीन कर्म-बन्धन में पड़ने की वृत्ति क्यों करते हो? अब प्रायश्चित्त करो और पशु-देह से मुक्त हो जाओ। तुम्हारी हिंसक-वृत्ति जो तुम्हारे जन्म के साथ ही जन्मी है, उसका नाश करो, शुद्ध हो।

हे शार्दूलो! तुम्हारे दुष्ट-कृत्य से अनेक स्त्रियाँ विधवा हुई हैं, उनके जीवन के साधन नष्ट हो जाने से वे दुःख भोगती हैं और शाप देती हैं। उसका फल भोगने से तुम कैसे छूटोगे? एक बार की क्षुधा-तृप्त करने में तुमने अनेक पिताओं को निर्वंश कर दिया है, अनेक बालक माता-पिता रहित कर दिये हैं। इस महा पाप से तुम्हारी मुक्ति होगी। क्या इस बात को तुम सच मानते हो? परन्तु अब जागृत हो जाओ और अपनी शेष आयु

पूर्ण होने से पूर्व अपने पाप का प्रायश्चित कर पवित्र हो जाओ।" भयहर का यह मधुर भाषण एकाग्र चित्त से बाघ-बाघिन सुनते थे, उनकी हिंसक वृत्ति धीरे-धीरे शान्त होने लगी, वे थोड़ी देर बैठकर फिर खड़े हो गये और भयहर के चरणों में प्रणाम कर दोनों अपनी मांद में चले गये और भयहर तो उस मांद के मुख पर ही निर्भय बैठा हुआ प्रणव मन्त्र जपता रहा।

दूसरे दिन क्षुधातुर बाघ-बाघिन ज्योंही अपनी खुराक खोजने के लिए गुफा से बाहर निकले, त्योंही उनकी दृष्टि फिर भयहर पर पड़ी। पूर्व दिवस का सभी ज्ञान मानो नष्ट हो गया। इस प्रकार पुनः मनुष्य को देखते ही उसके ऊपर तड़पने को तैयार हो गये। परन्तु प्रथम दिवस की भाँति ही भयहर गुरु-प्रताप और गुरु-वचन का स्मरण करके उन बाघ-बाघिन को सत्व रहित कर दिया।

इस प्रकार तीन-चार दिन बाघको नित्य वृत्ति से पीछे लौटाकर उसके हिंसक स्वभाव को अंकुश में लाने का भयहर ने पूर्ण प्रयत्न किया। भयहर के वचन सुनकर बाघ गुफा में चला जाता था, परन्तु उसकी क्षुधा ऐसी प्रदीप्ति हो गई थी कि एक दिन अकस्मात् गुफा में से निकलकर भयहर पर छलांग मारी, पर भयहर ने कुछ भी भय न मानकर अपने नाम के अनुसार ही गुण दिखलाया। बाघ के मुख में अपना हाथ डाल दिया और यही कहा कि "अरे दुष्ट शार्दूल! इतने-इतने उपदेश देने पर भी तेरा जातिगत स्वभाव न गया तो यह हाथ ले और अपना पेट तृप्त कर। मनुष्यों में भी तेरे समान अनेक हैं। पाप-वृत्ति वाले जीव अनेक प्रकारका सुश्राव्य ज्ञान प्राप्त करते हैं। क्षण भर के लिए पाप-कर्मों से पीछे लौटने का दृढ़ निश्चय करते हैं, परन्तु ज्योंही कुछ अवकाश मिलता है, त्योंही अपनी पूर्व वृत्ति को फिर प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे अधम प्राणी जिस प्रकार कभी भी अपना कल्याण प्राप्त नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार तेरी दशा है। जो तेरी हमेशा की क्षुधा तृप्त हो जाय तो यह मेरी देह जो केवल निरुपयोगी है उसे खाकर अपनी क्षुधा शान्त कर! परन्तु एक दिवस की क्षुधा की निवृत्ति के लिए परमात्मा की सृष्टि में से एक सुन्दर प्राणी का नाश करने के लिए पर-मात्मा ने तुझे उत्पन्न नहीं किया है।

भयहर के उक्त वचन वह व्याघ्र खड़ा-खड़ा सुन रहा था, इससे उसका हाथ चबाने पर भी न चबा सका। उसके मुखमें मनुष्य का हाथ था। ज्यों-ज्यों भयहर के वचन उसके कानों में प्रवेश करते गये, त्यों-त्यों वह भयहर के हाथ को मुख में से बाहर निकालने लगा और भयहर के वचन पूर्ण होते ही उसने उसका सारा हाथ मुख से बाहर निकाल दिया। धीरे-धीरे बाघ और बाघिन दोनों अपने स्थान को चले गये।

इस प्रकार भयहर का नित्य का क्रम चालू था। दिन-दिन अपनी क्षुधा तृप्त करने को व्याघ्र जब असमर्थ हो गया, तब अपनी वाणीमें बोला—"हे मनुष्य! मैं अपनी क्षुधा किस प्रकार शान्त करूँ?" तब भयहर ने कहा कि—"तू वनस्पति का आहार कर।" व्याघ्र को तो यह बड़ा विषम जान पड़ा, पर्वत पर लगे हुए फल-फूल आदि वनस्पति खाने का प्रयत्न किया, परन्तु कुछ भाया नहीं (अच्छा नहीं लगा) तो भी वह कई दिन का भूखा था, अतएव थोड़े से फल-फूलों से अपनी क्षुधा शान्त की।

जब से व्याघ्र और भयहर रात को एक एक ही गुफा में सोते थे। समय-समय पर

(शेष पृष्ठ २२ पर पढ़िए)

श्रवण और कीर्तन

● आचार्य विनोबा भावे

प्रह्लाद ने नौ प्रकार की भक्ति बताई है। उनमें भक्ति के दो प्रकार श्रवण और कीर्तन को बिल्कुल आरम्भ में रखा है। भक्ति-मार्ग में श्रवण-कीर्तनकी बड़ी महिमा गाई गई है। सुनी हुई वस्तु को बार-बार सुनना, कही हुई बात को बार-बार कहना, भक्तों की रीति है। तीनों लोकों में विचारना और बराबर बोलते रहना नारद सरीखों का जन्मजात धंधा है। उच्च वर्ग के लोगों में, मध्यम वर्ग के लोगों में, निचले वर्ग के लोगों में-तीनों लोकों में ही नारदजी की फेरी होती है और बराबर कीर्तन चलता है। कीर्तन का विषय एक ही है, वही भक्त-वत्सल प्रभु, वही पतित-पावन नाम! दूसरा विषय नहीं, दूसरी भाषा नहीं। वही गाना, वही रोना, वही कहना, वही चिल्लाना। न आलस्य है, न परेशानी; न थकावट है, न विश्राम; गाते-गाते फिरना और फिरते-फिरते गाना।

नारद सरीखों के लिए निरंतर गाना है, वैसे धर्मराज सरीखों के लिए सतत सुनना। महाभारत वनपर्व और शांतिपर्व ये दोनों विशाल पर्व धर्मराज की श्रवण-भक्ति के फल हैं। वनवास में रहते समय जो कोई ऋषि मिलने आता धर्मराज उसकी अनुनय करते। भक्ति-भाव से प्रणिपात करके जो सेवा बनती करते और जहाँ ऋषि ने कुशल-प्रश्न किया कि अपनी करुण कहानी कहने का निमित्त बनाकर लगते प्रश्न पूछने—"महाराज! द्रौपदी पर आज जैसा संकट है, वैसा आज तक कभी किसी पर पड़ा था क्या?" वे कहते—"क्या पूछते हैं यह आप? बड़ों-बड़ों ने जो कष्ट सहे हैं, उनके मुकाबले में तो द्रौपदी का और आपका कष्ट गिनती में नहीं है। सीता को, राम को क्या कम कष्ट सहने पड़े?" धर्मराज फिर पूछते—" सो कैसे?" इतना सहारा पा जाने के बाद ऋषि का व्याख्यान चलता। सारी राम-कहानी अथ से इति तक वह कहते और यह प्रेम-युक्त चित्त से सुनते। दूसरे किसी अवसर पर ऐसे ही कोई ऋषि आकर नल-दयमन्ती का नाम ले लेते, तो धर्मराज़ फौरन सवाल करते—"वह क्या कथा है?" अब राम की सीता कौन थी और नल-दयमन्ती की कथा क्या है? इतिहास का अज्ञान धर्मराज में होना कैसे माना जा सकता है? पर जानी हुई कथा भी संतों के मुख से सुनने में एक विशेष स्वाद होता है। इसके सिवा वही वस्तु बार-बार सुनने से विचार दृढ़ होता है। इसलिए धर्मराज ऐसे श्रवण-प्रेमी बन गये थे।

पर पुरानी बात जाने दीजिये। बिल्कुल इसी जमाने का उदाहरण लीजिये। नारद की तरह ही तुकाराम महाराज ने अन्तिम घड़ी तक कीर्तन-भक्ति की गूँज जारी रखी। रोज रात को भगवान् के मन्दिर में आकर कीर्तन करने का उनका क्रम आमरण अबाधित रूप से चला। लोग जाएँ, न जाएँ, भगवान् के सामने कीर्तन तो होगा ही। न सुनने वाले देवताओं को भी कीर्तन सुनाना

जिनका व्रत हो गया था, वे यदि सुनने वाले देवताओं को 'यथाधिकार' उपदेश करने का काम जोरोंसे करें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? समाज की बिल्कुल निचली श्रेणी से लेकर ठेठ ऊपर की श्रेणी तक सबको तुकाराम महाराज ने भगवान का नाम सुनाया। घरमें, मन्दिर में, घाट में, बाट में सर्वत्र वही एक-सा सुर, पत्नी को, बेटी को, भाई को, जमाई को, गाँव के मुखिया को, देश के शासक को, शिवाजी महाराज को, रामेश्वर भट्ट को, मंबाजीबुवा को, सबको तुकाराम महाराज ने हरि-नाम का एक ही उपदेश किया और आज भी उनकी अभंग वाणी वही काम अव्याहत रूप से कर रही है।

इधर के इतिहास में जैसे हमें तुकाराम-सरीखे 'सदा बोलते' भक्ति के स्रोत मिलते हैं, वैसे ही उस स्रोत से नहर काटकर राष्ट्र के धर्म-क्षेत्र की बागवानी करने वाले शिवाजी जैसे श्रवण-दक्ष किसान भी देखने को मिलते हैं। पचीस-पचीस मील की दूरी से कीर्तन सुनने के लिए बराबर दौड़ते जाना उनका नियम था और जो कुछ सुनना, वह आलस-वालस झाड़कर जी लगाकर सुनना और जैसा सुनना, उसके अनुसार आचरण करने का बराबर प्रयत्न करना, इसी को श्रवण कहना चाहिए। शिवाजी महाराज ने सतत श्रवण किया। किसी भी सत्पुरुष से सुनने का मौका उन्होंने सहसा हाथसे नहीं जाने दिया, तभी सब उद्योगों में लगाने के बाद भी बच रही इतनी स्फूर्ति का खजाना उनके हाथ में जमा हो सका।

भक्ति-मार्ग में जिसे श्रवण-भक्ति और कीर्तन-भक्ति कहते हैं, उसी को उपनिषद् में स्वाध्याय और प्रवचन नाम दिया है। नाम भिन्न होने पर भी अर्थ एक ही है। स्वाध्याय के मानी हैं सीखना और प्रवचन के मानी हैं सिखाना। इस सीखने और सिखाने पर उपनिषदों का उतना ही जोर है, जितना श्रवण और कीर्तन पर संतों का। "सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान् मा प्रमदः।" सच बोल, धर्म पर चल और स्वाध्याय से मत चूक। इन तीनों सूत्रों में ऋषि की सारी सिखावन आ गई। स्वाध्याय और प्रवचन अर्थात् सीखने-सिखाने का महत्व ऋषियों की दृष्टि में इतना ज्यादा था कि मनुष्य के लिए नित्य आचरण करने योग्य धर्मके तत्व बतलाते हुए उन्होंने प्रत्येक तत्व के साथ स्वाध्याय-प्रवचन का पुनः-पुनः उल्लेख किया है। "सत्य और स्वाध्याय-प्रवचन, तप और स्वाध्याय-प्रवचन इन्द्रिय-दमन और स्वाध्याय-प्रवचन, मानसिक शान्ति और स्वाध्याय-प्रवचन।" इस प्रकार प्रत्येक कर्त्तव्य को अलग-अलग कहकर हर बार ऋषि ने स्वाध्याय-प्रवचन का हेतु और विषय तो बतलाया ही, साथ ही उसका महत्व भी बता दिया है।

हमारा स्वराज्य-आंदोलन अत्यन्त व्यापक और गम्भीर आंदोलन है। यह एक ओर तीस करोड़ लोगों से-मानव-प्रजा के एक पंचमांश से सम्बन्ध रखने वाला होनेके कारण विशाल है और दूसरी ओर आत्मा का स्पर्श करने वाला होने के कारण गम्भीर है।

तीस करोड़ आदमियों से ही इस आन्दोलन का सम्बन्ध है, यह कहना भी संकुचित है। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो मालूम होगा कि सारे मानव जगत् की भवितव्यता इस आन्दोलन से सम्बद्ध है। पैर का नन्हा-सा काँटा निकालना भी सिर्फ पाँव का सवाल नहीं होता। सारे शरीर का हित-सम्बन्ध उससे रहता है। फिर बिगड़े हुए कलेजे को सँभालने का सवाल सारे शरीर को सुधारने

का सवाल कैसे नहीं है ? अवश्य यह सारे शरीर का सवाल है और कोई आसान सवाल नहीं है. जीने-मरने का सवाल है—'यक्ष-प्रश्न' है। जवाब दो, नहीं तो जान दो, इस तरह का सवाल है। हिन्दू-भूमि ! काल की दृष्टि से अत्यन्त प्राचीन, लोक-संख्या के हिसाब से जगत् के पांचवें हिस्से के बराबर, विस्तार की दृष्टि से रूस को छोड़कर पुरे यूरोप के बराबर, संस्कृति में उदार-उच्च, अद्भुत, प्राकृतिक सम्पत्ति में जगत् के लिए ईर्ष्या की वस्तु, हिन्दू और बौद्ध इन दो विश्व-व्यापक धर्मों को जन्म देने वाली और इसलाम का विस्तार-क्षेत्र बनी हुई, वाङ्मय वैभव में अद्वितीय यह भारत-भूमि ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट का हीरा ही नहीं, बलिक साम्राज्य की निगली हुई हीरे की कनी है। इसके जीवन-मरण पर दुनिया का भाग्य अवलम्बित है। इसलिए आज के हमारे स्वराज्य-आन्दोलन का सम्बन्ध सिर्फ तीस करोड़ (आज पचास करोड़) भारतीय जनता से ही न होकर सारे जगत से है और दूसरी ओर यह आन्दोलन आत्मा को स्पर्श करने वाला है, यह कहने से उसकी सच्ची गम्भीरता की कल्पना नहीं होती। स्वराज्य का यह आन्दोलन आत्म-शुद्धि करने वाला है और आत्म-शुद्धि का वेग साक्षात् परमात्मा से भेंट किये वगैर थमने वाला नहीं। इसलिए इस आंदोलन का घनफल परमात्मा से गुणित मनुष्य की दुनिया के क्ष के गुणनफल बराबर होगा।

आन्दोलन के इतने विशाल और गम्भीर होने की वजह से उसकी सिद्धि के लिए दो बातों की फिक्र रखना जरूरी है। एक तो उसे किसी खूंटे से कसकर बाँध देना चाहिए, नहीं तो वह हाथ से निकल भागेगा और दूसरे उसके तत्वों का श्रवण-कीर्तन जारी रखना चाहिए।

इस आन्दोलन का खूंटा अब निश्चित हो गया है। चरखा हमारे सारे आन्दोलन का खूंटा है। इसके चारों ओर आन्दोलन का चक्र फिराते रहना चाहिए। सुविधा और आवश्यकतानुसार कछुआ अपने अंग कभी अपने मजबूत कवच के अन्दर खींच लेता है और कभी बाहर फैला देता है। वैसा ही चरखे का मजबूत खूंटा कायम करके उसके

(● पृष्ठ १९ का शेष)

बाघ के मन में मनुष्याहार करने की इच्छा होती थी, पर जितेन्द्रि भयहर के रात-दिन जागृत रहने से बाघ अपनी इच्छा पूर्ण नहीं कर सकता था। भयहर नित्य बाघ को उपदेश दिये जाता था। गुरु कृपा से चार मास में भयहर ने मनुष्याहारी बाघ बाघिन को ऐसा वशकर लिया कि चातुर्मास की पूर्णाहुति के समय भयहर ने उसके मुख के आगे मांस लाकर रक्खा पर उसने उसकी ओर दृष्टि तक भी न की। इतने समय में बाघ-बाघिन ने अनेक बार भय उपजाया था परन्तु भयहरको कभी जरा भी भय नहीं जान पड़ा।

प्रिय पाठकगण ! भयहर ने अपना जो मानसिक और आत्मिक बल दर्शाकर व्याघ्र जैसे क्रूर प्राणी को उसके हिंसक स्वभाव से बदलकर मृदु स्वभाव का बना दिया, यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। सामान्य प्राणी तो व्याघ्र को देखते ही घबड़ा जायगा, शरीर शिथिल हो जायगा। जो अद्भुत बल और मन की स्थिरता भयहर ने दर्शायी है, इससे भी विशेष दृढ़ता और मनोबल मन्युहर दर्शाया है। अब यह दूसरे शिष्य "मन्युहर" का वृतान्त अगले अङ्क में पढ़ियेगा। *

प्रीतियुक्ताः पुनर्देश,
मानुषाणां भवन्त्ययुत ।
एवं नित्यं प्रवर्तते,
रोदसी च परस्परम् ॥

यज्ञ से ही देवता मनुष्यों पर प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार पृथ्वी और देवलोक दोनों एक-दूसरे की उन्नतिमें सदा सहयोगी होते हैं।

× × ×

अतः तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि वेद ही धर्म की प्रवृत्ति द्वारा सम्पूर्ण जगत को धारण करने वाला है। जीवोंको इस त्रिलोकी में वेद-ज्ञानसे बढ़कर कोई अन्य वस्तु नहीं है।

× × ×

हे देवि ! सम्पूर्ण वेदों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके द्विज कृतकृत्य हो जाता है और साधारण मनुष्यों की अपेक्षा ऊँची स्थिति में पहुँचकर देवता के समान प्रकाशित होने लगता है।

× × ×

जैसे हवा बादलों को उड़ाकर छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार वेद-शास्त्र जनित ज्ञान काम, क्रोध, भय, दर्प और बौद्धिक अज्ञान या अंधेरे को शीघ्र दूर कर देता है।

× × ×

अल्प मात्रं कृतोधर्मो,
भवेज्ज्ञानवता महान् ।
महानपि कृतोधर्मो ह्यय,
ज्ञानान्निष्फलो भवेत् ॥

अर्थात् ज्ञान सम्पन्न पुरुष के द्वारा किया हुआ थोड़ा-सा धर्म भी महान् बन जाता है और अज्ञानपूर्वक किया हुआ महान् धर्म भी निष्फल हो जाता है। अज्ञान का अपर नाम ही अन्धकार है।

× × ×

उमा देवी ने पुनः एक प्रश्न पूछा कि भगवन् ! कुछ मनुष्यों को पूर्वजन्म की बातों का स्मरण होता है, सबको नहीं होता। जिनको होता है, उसका क्या कारण है ?

× × ×

भगवान् शिव ने कहा, हे देवि ! जो मनुष्य सहसा मृत्यु को प्राप्त होकर सहसा जन्म ले लेते हैं, उनका पुराना अभ्यास या संस्कार कुछ समय तक बना रहता है। इसीलिए वे लोक में पूर्व जन्म की घटनाओं के ज्ञान से युक्त होकर जन्म ले लेते हैं। उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण कुछ-कुछ बना रहता है, पर ज्यों-ज्यों उनकी आयु बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों वे इसे भूलते जाते हैं। ऐसे पूर्व-जन्म की घटनाओं के स्मरण वाले व्यक्ति को जाति-स्मर कहा जाता है। यथा—

तस्माज्जातिस्मरा लोके
जायन्ते बोधसंयुताः ।
तेषां विवर्धतां संज्ञा,
स्वप्नवत् सा प्रणश्यति ।
परलोकस्य चास्तित्वे,
मूढानां कारणं त्विदम् ॥

—अनुशासन पर्व (महाभारत)

पत्रं पुष्पं फलं तोयम्

कतिपय वरणीय सूक्तियाँ

मनः पूर्वागमा धर्मा अधर्मश्च न संशयः ।
मनसाबद्ध्यते चापि मुच्यते चापि मानवः ॥
निगृहीते भवेत् स्वर्गो विसृष्टे नरको ध्रुवः ।

भावार्थ-इसमें संदेह नहीं कि धर्म और अधर्म पहले मनमें ही आते हैं । मनसे ही मनुष्य बँधता है और मन से ही मुक्त होता है । यदि मन को वशमें कर लिया जाय, तब तो स्वर्ग मिलता है और यदि उसे खुला छोड़ दिया जाय तो नरक की प्राप्ति अवश्यम्भावी है ।

× × × ×

जीवाः पुराकृतेनैव तिर्यग्योनि सरीसृपा ।
नानायोनिषु जायन्ते स्वकर्म परिवेष्टिताः ॥

भावार्थ—जीव अपने पूर्व कृतकर्म के ही फल से पशु, पक्षी एवं कीट आदि होते हैं । अपने-अपने कर्मों से बँधे हुए प्राणी ही भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेते हैं ।

× × × ×

जायमानस्य जीवस्य मृत्युः पूर्वं प्रजायते ।
सुखं वा यदि वा दुःखं यथापूर्वं कृतं तु वा ॥

भावार्थ—जो जीव जन्म लेता है, उसकी मृत्यु पहले ही पैदा हो जाती है । मनुष्य ने पूर्वजन्म में जैसा कर्म किया है तदनुसार ही उसे सुख या दुःख प्राप्त होता है ।

× × × ×

अप्रमत्तः प्रमत्तेषु विधिर्जागर्ति जन्तुषु ।
न हि तस्य प्रियः कश्चिन्न द्वेष्यो न च मध्यमः ॥

भावार्थ—प्राणी प्रमाद में पड़कर भले ही सो जायँ, परन्तु उनका प्रारब्ध या भाग्य प्रमाद शून्य-सावधान होकर सदा जागता रहता है । उसका न कोई प्रिय है न द्वेष-पात्र है और न कोई मध्यस्थ ही है ।

—महाभारत वनपर्व

मूढानामेव भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः।
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृत भुक्पुमान् ॥

अर्थात्—क्रोध तो मूर्खों को ही हुआ करता है, विचारवानों को भला कैसे हो सकता है? हे प्रिय! यहाँ कौन किसको मारता है? पुरुष स्वयं ही अपने किये का फल भोगता है।

(विष्णुपुराण अ० १/१७)

सञ्चितस्यापि महता वत्स क्लेशेन मानवैः।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः ॥

भावार्थ—हे प्रियवर! यह क्रोध तो मनुष्य को अत्यन्त कष्ट से संचित यश और तप का भी प्रबल नाशक है।

(विष्णुपुराण अ० १/१८)

स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः।
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ॥

भावार्थ—हे तात! इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ने वाले इस क्रोध का महर्षिगण सदा विरोध करते हैं। इसलिए तुम इसके वशीभूत मत हो।

(विष्णुपुराण अ० १/१९)

अलं निशाचरैर्दग्धैर्दीनैरनपकारिभिः।
सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः ॥

भावार्थ—अब इन बेचारे निरपराध राक्षसों को दग्ध करने से कोई लाभ नहीं, अपने इस मन को शान्त करो। साधुओं का धन तो सदा क्षमा ही है। (विष्णु० १/२०)

व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा।
काण्डं कोषस्तु पुष्पं च क्षीरं तद्वच्च तण्डुलाः ॥
तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः।
प्ररोहहेतुसामग्रीमासाद्य मुनिसत्तम ॥
तथा कर्मस्वनेकेषु देवाद्याः समवस्थिताः।
विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥

भावार्थ—हे मुनिसत्तम! जिस प्रकार धान के बीज में मूल, नाल, पत्ते, अंकुर, तना, कोष, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष और कण सभी रहते हैं तथा अंकुरोत्पत्ति की हेतुभूति (भूमि एवं जल आदि) सामग्री के प्राप्त होने पर वे प्रकट हो जाते हैं। उसी प्रकार अपने अनेक पूर्व कर्मों में स्थित देवता आदि विष्णु-शक्ति का आश्रय पाने पर आविर्भूत हो जाते हैं।

(विष्णुपुराण अ० ७/३७-३८-३९)

● प्रेषक—श्री केशवदेव उपाध्याय

गायब बालक की वापसी

प्रस्तुत प्रसंग में एक ऐसे आध्यात्मिक घटनाक्रम का वर्णन करने का प्रयास किया जा रहा है, जिसके कथानक से यह तथ्य स्वतः उजागर हो जायगा कि ये करुणासागर आनन्दकन्द आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज अपने बच्चों की छोटी-मोटी कामनाओं को किस प्रकार सहज तरीके से पूर्ण कर दिया करते हैं।

योगयोगेश्वर अनन्त श्री विभूषित आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेवजी महाराज के चरण-कमलों की अहैतुकी करुणकृपा द्वारा संरक्षित योग-प्रचार मण्डल लखनऊ का, योगके प्रचार एवं प्रसार में अपना एक अलग ही स्थान है। इस आश्रम की देखभाल का कार्य अनन्य गुरु-भक्त हमारे आदरणीय गुरु-भाई श्री मोहनलाल अग्रवाल और परमयोगी साधक ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश पालीवाल द्वारा बड़े ही भव्य एवं सुचारु रूप से सम्पादित किया जा रहा है।

इस आश्रम में विराजमान अनन्त कोटिः ब्रह्मांड नायक, परम योग-योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज एवं आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेवजी महाराज के स्वरूपों के सामने आर्त्तभाव एवं सच्चे मन से की गई प्रार्थना निष्फल नहीं जाती, ऐसा यहाँ के लोगों की आम भावना है।

इस आश्रम से सम्बन्धित हमारी एक आदरणीया गुरु-बहन जिनका नाम 'सुन्दर रानी' है और जिन्हें हमारे गुरु-भाई, बहन 'माथुर दादी' के नाम से सम्बोधित करते हैं, श्री प्रभुजी की बड़ी ही कृपापात्र शिष्या हैं। इस मण्डलसे सम्बन्धित हमारे किसी भी गुरु-भाई, बहन पर जब कोई विशेष परेशानी आती है तो वे 'माथुर दादी' से अवश्य ही प्रार्थना करके प्रश्न किया करते हैं कि दादी जी क्या करना चाहिए, हम तो बहुत परेशान हैं। प्रभुजी के प्रेम में ओत-प्रोत ये 'माथुर दादी' सबको प्रभु-चरित्र सुना-सुनाकर आनंदित किया करती हैं। प्रसंग कुछ इस प्रकार घटित हुआ।

श्री मोहनलाल अग्रवाल जो पेशे से ठेकेदार हैं, कुछ कार्यवश लखनऊ में ही एक कार्यालय में पहुँचे। यह एक सहायक अभियन्ता का कार्यालय था और इस कार्यालय में कार्यरत एक क्लर्क से हमारे आदरणीय गुरु-भाई श्री मोहनलालजी अग्रवाल के सम्बन्ध अच्छे थे। कारण यह था कि यह क्लर्क महोदय आध्यात्मिक विचारधारा के व्यक्ति हैं। श्री मोहनलाल और इस क्लर्क महोदय के बीच जब भी मुलाकात होती तो थोड़ी देर के लिए ही सही, परन्तु प्रभु-चर्चा अवश्य ही होती। ऐसा मोहनलालजी ने स्वीकार किया है। सहायक अभियन्ता-कार्यालय पहुँचने पर उपरोक्त लिपिक महोदय से श्री मोहनलाल का उचित अभिवादन हुआ।

इसके बाद मोहनलालजी ने प्रश्न किया कि कहो भाई! तुम्हारे सहायक अभियन्ता महोदय के क्या हाल-चाल हैं? लिपिक महोदय ने कहा कि इनके हाल-चाल तो खराब हैं भाई जी। मोहनलाल ने साश्चर्य

पूछा कि क्यों, क्या हो गयी है, भाई जी ? लिपिक महोदय ने मोहनलालजी से निवेदन किया कि ये अभी हाल ही में स्थानान्तरित होकर आये हैं अभी आप, इनसे परिचित नहीं हैं। अतः इसलिये उनसे आपका परिचय कराते हैं। इतना कहने के बाद लिपिक महोदय ने हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री मोहनलाल जी के साथ सहायक अभियन्ता के कक्ष में प्रवेश किया एवं दोनों आदमियों का एक दूसरे से परिचय कराया। श्री मोहनलाल जी ने जब सहायक अभियन्ता के कमरे में प्रवेश किया तब उन्होंने देखा कि वे सिर पर हाथ रखकर बैठे हैं, और कुछ गहरी चिन्तामें हैं। लिपिक महोदय ने मोहनलाल जी का परिचय बताते हुए सहायक अभियन्ता को बतलाया कि आप एक नेकनीयत व ईमानदार ठेकेदार हैं। आप आध्यात्मिक वृत्ति के व्यक्ति हैं और एक सर्व समर्थ योगिराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज के लाड़ले शिष्य हैं। आपने अपने मकान के बगल में ही आश्रम भी बनवा लिया है जहाँ नियमित आरती-पूजन एवं ध्यानाभ्यास हुआ करता है। इस आश्रम पर नियमित आरती-पूजन में सम्मिलित होने वाले प्राणियों के कष्ट इनके गुरुदेव भगवान की करुण कृपा से निवारण हो जाया करते हैं। अभी वे परिचय करा ही रहे थे कि श्री मोहनलाल जी ने सहायक अभियन्ता महोदय से प्रश्न किया कि कहिये मान्यवर! आप किस विपत्ति में पड़ गये हैं। आपके बाबूजी बतला रहे थे कि आप बहुत बड़ी विपत्ति में फँस गये हैं।

श्री मोहनलाल जी अग्रवाल की बात एवं अपने कार्यालय में कार्यरत लिपिक की बातों को श्रद्धावान भावुक मन से सुनने के बाद उन सहायक अभियन्ता ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया, "अग्रवाल जी, मेरा नाम टी० सी० गुप्ता है, और मैं उत्तर प्रदेश के बलिया जिले का निवासी हूँ। मेरी ससुराल शहरी क्षेत्र में है। शादी के बाद जब मेरी धर्मपत्नी की विदा मायके से ससुराल के लिए हुयी तो मायके के लोगों ने एक गरीब यादव के छोटे बालक को भी उसके साथ भेज दिया, इस नियत से कि यह गरीब यादव का लड़का है इसका पालन-पोषण आसानी से हो जायगा एवं हमारी बच्ची पर काम का भार नहीं पड़ेगा। क्योंकि घरके छोटे-मोटे कार्य यह लड़का कर दिया करेगा। यह लड़का काफी समय तक हम लोगों के साथ रहा। हम स्थानान्तरित होकर जब लखनऊ आये तो वह भी हम लोगों के साथ लखनऊ आया। लखनऊ में भी वह हम लोगों के साथ काफी दिनों तक रहता रहा।

करीब एक माह हुआ यादव का वह लड़का अचानक घर से गायब हो गया। जब सुबह का निकला-निकला वह शाम तक घर वापस नहीं आया तो चिन्ताका विषय बनता गया। मन में अनेक प्रकार के भाव आये कि कोई जबरदस्ती उठा ले गया या वह अपने मन से भाग गया, कुछ बात समझ में नहीं आयी। रात्रि भर हम लोग परेशान रहे एवं सोचते रहे कि हे भगवान्! इस कलंकके धब्बे से तो हम लोगों को बचा लो। सुबह होने पर हमने बालक की खोजका कार्य शुरू किया। पंडित ओझा, मौलवी, पीर, ज्योतिषी और उन सभी गुनियों के सामने हमने सादर प्रणाम निवेदित किया। जहाँ कहीं किसी ने हमें बतलाया गये-आये, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ।

करीब हफ्ते भर बाद हमने उस बच्चे के माता-पिता को सूचित कर दिया कि आपका बालक हमारे यहाँ से लापता हो गया है, मैं

उसकी खोज कर रहा है। यदि आप लोगों के पास हो तो पहुँचा देवें अन्यथा आप लोग भी उसे खोजने की कोशिश करें। पत्र पाते ही उसके परिवार के सदस्य हमारे ऊपर अनेक प्रकार के दोषारोपण करने लगे एवं कहने लगे कि साहब! हमारा बच्चा हमें लाकर दीजिये।

अब धीरे-धीरे काफी समय निकल गया, परन्तु उसका बच्चा मिला नहीं। दिन का समय तो उसे खोजने में व्यतीत हो जाता है, परन्तु रात के समय उसके आत्मीयजन जब विलाप कर उसकी मांग करते हैं तो उनका करुण-क्रन्दन सहन नहीं होता। इस समय इसी कष्ट और परेशानी में हम पड़े हुए हैं। समय ज्यों-ज्यों व्यतीत होता जा रहा है, उसके आत्मीयजनों द्वारा उसे वापस मांगने की बात का दबाव उसी अनुपात में बढ़ता जा रहा है। इस कारण बस, मैं बहुत ही परेशान हूँ अग्रवाल साहब। इतना कहते-कहते सहायक अभियन्ता के चेहरे पर उदासी छा गयी एवं उनकी दशा देखकर हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री अग्रवाल जी को दया आ गयी।

उन्होंने मन ही मन श्री प्रभुजी से प्रार्थना की, कि प्रभुजी इनके यहाँ कार्य करने वाला बालक वापस आ जाय। उन्होंने अपने घर का पता बतलाते हुए उनसे कहा —कि कल सवेरे आप आरती के समय पर आश्रम पर आइये, यदि प्रभु की नजर घूम गयी तो आपका कार्य हो ही जायेगा। इतना उनसे कहकर हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री मोहन-लाल जी अपने कार्य देखते-सुनते सायंकाल अपने निवास स्थान पर आ गये। सायंकाल आरती पूजन के बाद श्री अग्रवाल जी ने 'माथुर दादी' से इस घटना का पूरा विवरण सुनाते हुए यह कामना व्यक्त की थी कि यदि प्रभु कृपा से बच्चा वापस आ जाय तो बड़ा ही अच्छा होगा।

श्री मोहनलाल की बातों को सुनते-सुनते प्रभुजी के प्रेम में ओत-प्रोत श्रीमती माथुर दादी की बाहरी आँखें बन्द हो गयीं और उन्होंने स्पष्ट देखा कि प्रभुजी आदेश दे रहे हैं कि मोहनलाल से कह दो, इतनी छोटी-सी बात के लिए परेशान या उदास होने की आवश्यकता नहीं है। वह लड़का लखनऊ शहर में एक चाट वाले की दूकान पर कार्य कर रहा है। उसके मन में प्रेरणा कर दी गई है और तीन दिन के अन्दर वह टी० सी० गुप्ता को मिल जावेगा। ये सब बातें तो तत्काल हो गयीं, परन्तु 'माथुर दादी' ने उस समय किसी को कुछ नहीं बतलाया।

सुबह की आरती-पूजा की तैयारी, अगले दिन जब की जा रही थी, उसी समय सहायक अभियन्ता टी० सी० गुप्ता भी आ गये। ये बड़े ही श्रद्धावान एवं प्रेमयुक्त मन से प्रभुजी की आरती पूजा में सम्मिलित हुए। आरती-पूजा की विधिवत समाप्ति के बाद श्री मोहनलाल ने टी० सी० गुप्ता से दादीजी का परिचय कराया और यह बत-लाया कि ये वही गुप्ता जी हैं, जिनकी बात सायंकाल आरती के बाद मैं आपसे निवेदन कर रहा था। उनकी बात सुनने के बाद 'माथुर दादी' ने कहा कि मोहनलाल जी! प्रभुजी की इच्छा है कि आप इस विषय में लेशमात्र भी चिन्ता न करें। उनकी आज्ञा है कि वह लड़का इसी शहर में किसी चाट की चलती-फिरती दूकान पर कार्य कर रहा है और तीन दिन के अन्दर वापस आ जावेगा। चूँकि यह बात टी० सी० गुप्ता के सामने ही हो रही थी, अतः उन्हें बड़ा ही आश्चर्य-सा

लग रहा था। इसके बाद गुप्ता ने कुछ समय तक उस आश्रम पर रुक कर सत्संग लाभ लिया और उसके बाद अपने निवास-स्थान पर लौट गये।

लखनऊ-आश्रम पर घटित इस घटना की भविष्यवाणी को श्री गुप्ताजी ने अपनी पत्नी को विधिवत् समझाया। उन्होंने बतलाया कि उस आश्रम पर तो बड़े विचित्र और असम्भव कार्य हुए हैं एवं हो रहे हैं, परन्तु हमें तो पूर्ण विश्वास तब होगा, जब तीन दिनके अन्दर वह यादव का बालक वापस आ जावेगा। फिर भी इस घटना ने उन पर अपनी छाप डाल दी। वे जब भी घरसे बाहर निकलते थे, चाहे अकेले हों या और किसी के साथ या अपनी पत्नी के साथ हों, सड़क पर चलते समय चाट की दूकानों को बड़े ही ध्यान से देखा करते थे। कभी-कभी तो ऐसा होता था कि उनके साथ चलने वाला आगे निकल जाता था और वे पीछे ही देखते रह जाया करते थे। इस प्रकार दो दिन का समय व्यतीत हो गया। अब प्रभुजी की भविष्य-वाणी का अन्तिम तीसरा दिन आरम्भ हो गया।

गुप्ताजी ने दोपहर तक उस बालक का इन्तजार किया,परंतु वह नहीं आया। दोपहर तक इन्तजार करने के बाद वे लोग उदास मनसे इस नियत से सिनेमा हॉल जाने के लिए चल पड़े कि वहाँ कुछ समय व्यतीत हो जायगा। एक सिनेमाहॉल में टिकट न मिलने पर ये दूसरे सिनेमा-घर गये। वहाँ टिकट मिल जाने पर उनकी पत्नी ने इन्हें हॉल में प्रवेश करने को कहा तो वे वहाँ उपस्थित चाट की दूकानों को देख रहे थे। इस पर उनकी धर्म-पत्नी ने कहा कि पता नहीं तुम्हें क्या हो गया है। जहाँ कहीं भी चाट की दूकान देखते हो रुक जाते हो। चलो, जल्दी चलो; पिक्चर स्टार्ट होने का समय हो गया है। अभी गुप्ताजी अपनी पत्नी की यह बात सुनकर हॉल में जाने के लिए मुड़ ही रहे हैं कि अचानक घटना घट गई।

वही यादव का गायब बच्चा, सभी गुप्ता एवं उनका परिवार काफी दिन से खोजने में परेशान था एवं वह नहीं मिल रहा था आज अचानक सामने आकर पति-पत्नी के बीच में हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। पति-पत्नी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। गुप्ता जी ने उससे प्रश्न किया कि क्यों, तुम कहाँ चले गये थे, क्यों गये थे, तुम्हें कोई जबर-दस्ती लेकर गया था या तुम अपने ही मन से गए थे। तुम्हें क्या कष्ट था जो कि तुम चले गए थे। यदि तुम्हें कोई कष्ट था तो हमें तुमने बतलाया क्यों नहीं ?

इस प्रकार अपने सामने यादव के बच्चे से श्री गुप्ता ने घबड़ाहट में ही अनेक प्रश्न किये। यादव का बच्चा भी भाव-विह्वल मन से उनकी प्रेम-भरी बातें सुनता रहा। उसने जब कुछ कहने की शुरुआत की तो उसका कण्ठ भर आया और उसने फूट-फूटकर रोना आरम्भ कर दिया। इसके बाद गुप्ता जी ने उसे गले से लगा लिया और सभी लोगों के साथ वे हमारे लखनऊ आश्रम पहुँच गये। अपने पारिवारिकजनों एवं उस बच्चे के साथ सिनेमा-घर के मुख्य-द्वार से आश्रम के मुख्य-द्वार तक पहुंचते-पहुँचते सबके मनोभाव आस्तिक बन गये थे। लखनऊ आश्रम पहुंचने पर श्री टी० सी० गुप्ता ने परिवार के सभी सदस्यों के साथ श्री प्रभुजी एवं श्री महाप्रभुजी के स्वरूपों को प्रणाम किया। इसके बाद, आदरणीय गुरु-भाई श्री ओमप्रकाश जी पालीवाल

(ब्रह्मचारी जी) और श्री मोहनलाल जी अग्रवाल से बालक की वापसी की बात विधिवत् निवेदित की।

श्री टी० सी० गुप्ता ने बतलाया कि यद्यपि आदरणीया श्रीमती 'माथुर दादी' ने तो परसों ही बतला दिया था कि यह शायद बालक तीसरे दिन वापस आ जायगा, परन्तु बालक की वापसी के बाद आज जब मैंने स्वयं देखा है कि वह एक चाट वाले के यहाँ से भागते हुए हमारे पास आया तो श्री प्रभु जी की बातों पर हमें अब पूर्णरूपेण विश्वास हो गया। इसके बाद वे लोग आरती-पूजा में शामिल रहे और काफी समय तक सत्संग चलता रहा। आजकल श्री टी० सी० गुप्ता प्रमोट हो गये हैं तथा अधिशासी अभियन्ता के पद पर कानपुर में कार्यरत हैं। उस घटना के बाद हमारे उन्होंने आराध्यदेवजी से सपत्नीक योग-दीक्षा ग्रहण की और इस समय हमारे गुरु-भाई तथा श्री प्रभुजी के बड़े ही लाड़ले बच्चों में से हैं।

इस प्रकार के अनेक चरित्र आपको अपने सिद्धयोग दरबार में देखने को मिल जायेंगे, जिसके अध्ययन से यह तथ्य स्वतः समझ में आ जाता है कि हमारे सर्व समर्थ श्री गुरुदेवजी महाराज अपने बच्चों की छोटी-छोटी कामनाओं को भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पूर्ण कर दिया करते हैं। केवल उन कामनाओं को छोड़कर जिसके द्वारा उस शिष्य का या उनके किसी और बच्चे का अहित होने का या साधना में अन्तराय आने का भय रहता है। अब सर्व भयहारी, सर्व मङ्गलकारी और सर्व समर्थ श्रीसद्गुरुदेवजी महाराज के युगल-चरणों में कोटिशः प्रणाम के बाद लेख को यहीं विश्राम देते हुए 'श्री सिद्धयोग' पत्रिका के सुयोग्य पाठकों से गल्तियों के लिए सानुरोध क्षमा प्रार्थना है।

अपने गुरु और इष्ट पर विश्वास रखिए

- अपने हृदय की गहराई से ईश्वर के नाम का जप करो और पूरी श्रद्धा से ठाकुर के शरणागत हो जाओ। इस बात की चिन्ता मत करो कि तुम्हारा मन इधर-उधर की चीजों में कैसे उलझा हुआ है। तुम अध्यात्मपथ पर आगे बढ़ रहे हो अथवा नहीं, यह सब गुनने-विचारने में समय मत गँवाओ। अपनी प्रगति का स्वयं मूल्यांकन करना अहंकार है। अपने गुरु और इष्ट की कृपा पर विश्वास रखो।

- निष्ठापूर्वक जप, तप और कर्म करते रहो। तभी तुम्हें उनकी कृपा प्राप्त होगी। उनकी कृपा पृथ्वी के सभी प्राणियों पर निरन्तर बरस रही है। उसकी याचना करना आवश्यक है। निष्ठापूर्वक ध्यान करते रहो और तब तुम्हें उनकी अनन्त कृपा का ज्ञान हो जाएगा। ईश्वर श्रद्धा, भक्ति और प्रेम चाहते हैं। केवल बाहरी शाब्दिक उच्चारण का स्पर्श भी नहीं कर सकते।

—माँ शारदादेवी

● श्री सुरेन्द्र बहादुर एम० ए०

सत्कार्यवाद का सिद्धान्त तथा प्रकृति

प्रकृति को प्रधान अथवा अव्यक्त भी कहा जाता है। इसका अस्तित्व अनुमान के द्वारा सिद्ध होता है। जो कुछ भी भौतिक है, अर्थात् भूत-द्रव्य और शक्ति दोनों ही प्रकृति से उत्पन्न हैं। प्रकृति परिणामी है और देश-कालयुक्त सम्पूर्ण सृष्टि परिणाम है। सांख्य-योग के सिद्धान्त को परिणामवाद अथवा परिवर्तन का सिद्धान्त कहा जाता है। आकाश और काल प्रकृति के ही रूप हैं। प्रकृति से पृथक इनका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। प्रकृति ही देश, काल तथा भूत-द्रव्य का उपादान कारण है।

प्रकृति के अनुमान की प्रक्रिया को समझने के लिए सत्कार्यवाद का सिद्धान्त समझ लेना आवश्यक है। न्याय तथा वैशेषिक असत्कार्य-वाद का सिद्धान्त मानते हैं। नैयायिकों का कहना है कि कोई भी कार्य अपनी उत्पत्ति से पहले असत् रहता है अर्थात् उत्पत्ति से पूर्व कार्य का अपने कारण में अभाव रहता है, किन्तु सांख्य-दर्शन कहता है कि कार्य अपनी उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में सत् रहता है। अर्थात् कार्य का अभाव अपनी उत्पत्ति से पूर्व भी नहीं रहता। अन्तर केवल इतना होता है कि जिसे हम कार्य की उत्पत्ति कहते हैं, वह उसी का व्यक्त स्वरूप है जो पहले अपने कारण में अव्यक्त रूप में सत् था। यद्यपि नैयायिक इस बात को मानते हैं कि कारण और कार्य में नित्य सम्बन्ध है, परन्तु वे दोनों एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। उनके अनुसार उत्पत्ति से पूर्व कार्य का कारण में 'प्रागभाव' होता है और नाश के पश्चात् उसका 'ध्वंसाभाव' हो जाता है। इस प्रकार यदि नैयायिकों का असत्कार्यवाद मान लिया जाय तो हमें यह मानना पड़ेगा कि सृष्टि का अभाव उत्पत्ति से पूर्व भी था और प्रलय के पश्चात् भी रहेगा। किन्तु यदि न्याय उपा-दान कारण और कार्य का नित्य सम्बन्ध मानता है तो फिर कार्याभाव कैसे सम्भव हो सकता है?

सांख्यकारिका इस असत्कार्यवाद का खण्डन करके सत्कार्यवाद की स्थापना करती है, जिसे योग-दर्शन भी ज्यों का त्यों स्वीकार करता है। कारिका इस प्रकार है—

असदकरणादुपादान ग्रहणात्,
सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात्,
कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥

इस कारिका में कारण के द्वारा कार्य को व्यक्त रूप देनेसे पूर्व कार्य को सत् सिद्ध करने के लिए पाँच युक्तियाँ दी गई हैं—

(१) असदकरणात्—जो असत् है, उसे अस्तित्व में लाना किसी के लिए भी असंभव है। यदि असत् को सत् बनाना सम्भव होता तो वन्ध्या पुत्र तथा आकाश-कुसुम का अस्तित्व भी सम्भव हो जाता, किन्तु ऐसा सर्वथा असम्भव है। अतः यह मानना पड़ेगा कि यदि कार्य का पूर्व में अभाव था तो वर्त-

मान में उसका भाव नहीं हो सकता। जो असत् है, वह सत् किसी काल में नहीं हो सकता। गीता में कहा गया है—

नाऽसतो विद्यते भाव,
नाऽभावो विद्यते सतः।

अर्थात् असत् का कभी भाव नहीं होता और सत् का कभी अभाव नहीं होता।

(२) उपादान ग्रहणात्—उपादान के ग्रहण से भी। कार्य (घट) का सम्बन्ध अपने उपादान कारण (मिट्टी) से होता है। कोई भी सम्बन्ध दो सत् वस्तुओं में ही हो सकता है। सत और असत् में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। यदि किसी कार्य को उसकी उत्पत्ति से पूर्व कारण में असत् मान लिया जाय तो कार्य और कारण में कोई सम्बन्ध ही नहीं रहता। ऐसी दशा में कोई भी कार्य किसी भी कारण से उत्पन्न हो सकता है। दूध-दही में सत् रहता है, इसीलिए दही चाहने वाला दूध को ग्रहण करता है। यदि कार्य अपने कारण में पहले से ही विद्यमान न रहता तो दही चाहने वाला जल लेकर भी उससे दही बना लेता।

(३) सर्वसंभवाभावात्—कार्य कारण में सम्बन्ध न मानने पर सभी कार्य सम्भव हो जायेंगे। किन्तु यह अनुभव के विरुद्ध है।

(४) शक्तस्य शक्तकरणात्—यदि कारण और कार्य में नित्य सम्बन्ध न मानकर यह मान लिया जाय कि कारण में एक ऐसी शक्ति रहती है जो कार्य को उत्पन्न कर देती है, क्योंकि कारण में शक्ति की उपस्थिति का अनुमान कार्य की उत्पत्ति से होता है तो यह मानना ठीक नहीं है। शक्त शक्य को ही उत्पन्न कर सकता है अन्यथा प्रत्येक कार्य को उत्पन्न कर सकता।

(५) कारण भावात्—कार्य कारणात्मक होता है, कारण से भिन्न नहीं होता।

यदि तेल उत्पत्ति से पूर्व असत् होता तो तिल से न निकल कर रेत से भी निकल सकता था। कार्य और कारण में कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य मानना पड़ेगा। यदि कारण और कार्य को एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न माना जायगा, तो 'कार्य-कारण-सम्बन्ध' नामक धारणा ही समाप्त हो जायगी। अतः उत्पत्ति से पूर्व किसी न किसी रूप में कार्य का अस्तित्व मानना पड़ेगा।

बृहदारण्यक उपनिषद् के भाष्य में श्री शंकराचार्य ने सत्कार्यवाद का बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया है—"जब कारण एक कार्य को उत्पन्न करता है तब वह दूसरे कार्य का तिरोधान कर देता है। एक कारण में अनेक कार्य अव्यक्त रूप में रहते हैं। उनमें से एक की ही अभिव्यक्ति एक समय में हो पाती है। शेष का रूप तिरोहित रहता है। एक कार्य के नष्ट हो जाने पर कारण का नाश नहीं होता। पिण्ड-कार्य के नष्ट हो जाने पर मिट्टी अर्थात् कारण घट के रूप में प्रतीत होती है। अभिव्यक्त होना ही कार्य की उत्पत्ति है। अभिव्यक्ति का अर्थ है ज्ञान विषय हो जाना। अविद्यमान घड़ा सूर्य के उदय होने पर भी नहीं दिखलाई दे सकता। इसी प्रकार असत् कार्य की कभी प्रतीति नहीं हो सकती। जब तक मिट्टी की अभिव्यक्ति नहीं होती जब तक मिट्टी के अवयव घटादि के आकार में रहते हैं। अतः उत्पत्ति से पूर्व घट विद्यमान होता है, केवल उसके स्वरूप पर आवरण पड़ा रहता है, ऐसा मानना चाहिए।"

कार्य का आवरण करने वाला दूसरा कार्य होता है। एक कारण के अनेक कार्य हो

सकते हैं। इसमें से एक समय में एक को छोड़कर शेष सभी कार्य अव्यक्त रूप में रहते हैं जो कार्य अव्यक्त रहता है वह अन्य कार्यों के आवरण का हेतु रहता है। एक ही धातु-पिण्ड से अनेक मूर्त्तियाँ बनाई जा सकती हैं। परन्तु एक समय में एक ही मूर्त्ति अभिव्यक्त की जा सकती है। इसी प्रकार कोई भी कारण एक समय में एक ही कार्य को अभिव्यक्त कर सकता है।

संसार के सभी पदार्थ त्रिगुणमय हैं। कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से मुक्त हो। जब सारा जड़ जगत इन्हीं तीनों गुणों से बना है, तो इसके मूल कारण में भी इन तीन गुणों का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। वह मूल कारण प्रकृति है। जिस प्रकार तीन धागों के संयोग से एक रस्सी बनती है उसी प्रकार तीनों गुणों के संयोग से प्रकृति की एकता बनती है। सांख्य तथा योगदर्शन गुण और गुणी में भेद नहीं मानते। गुण तथा गुणी में तादात्म्य सम्बन्ध होता है। प्रत्येक गुण अनन्त है। गुणों के अनन्त होने के कारण ही प्रकृति भी असीम है।

सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति के तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। पुरुष के सान्निध्य से यह साम्यावस्था भंग हो जाती है और वैषम्य उत्पन्न हो जाता है। यह विषमता ही जगत् के मूल में विद्यमान है। विषमता के कारण सृष्टि रूपी कार्य उत्पन्न होता है। यहाँ यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि पुरुष तो निष्क्रिय है वह भला प्रकृति को गति कैसे प्रदान कर सकता है? इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार चुम्बक बिना स्वयं गतिमान हुए ही लोहे में गति उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार पुरुष के सान्निध्य मात्र से प्रकृति गतिशील हो जाती है। प्रकृति की सारी परिणमन क्रिया पुरुष को मुक्त करने के लिए ही होती है जिस प्रकार गाय के थन से दूध बछड़े के लिए प्रस्रवित होता है।

जड़ जगत के जितने भी पदार्थ हैं वे सभी प्रकृति के परिणाम हैं, अतः वे अपनी उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति में विद्यमान थे। सृष्टि में कोई भी वस्तु सर्वथा नवीन नहीं है। कारण में जो अप्रकट रहता है वही उत्पत्ति में प्रकट होता है। जिस क्रम से प्रकृति सृष्टि करती है उसके उल्टे क्रम से संसार को अपने में लय कर लेती है जिसे प्रलय कहते हैं। प्रलय की अवस्था में भी प्रकृति क्रियाहीन नहीं रहती। उस समय उसमें सजातीय परिणाम होता है। परिणाम दो प्रकारके होते हैं—सजातीय तथा विजातीय। पानी से बर्फ का बनना सजातीय परिणाम है, क्योंकि अपनी और बर्फ के मुख्य गुणों में भेद नहीं होता, किन्तु मिट्टी, वायु आदि से जो घास बनती है, वह विजातीय परिणाम है। अतः प्रकृति का सजातीय परिणाम प्रलय है और उसका विजातीय परिणाम सृष्टि है। सृष्टि का क्रम इस प्रकार है—

जब पुरुष के सान्निध्य से प्रकृति की साम्यावस्था भंग होती है तब उसमें विकार उत्पन्न होता है। प्रकृति का प्रथम विकार महत्तत्व है जिसे बुद्धि भी कहते हैं। बुद्धि स्मृति के संस्कारों का अधिष्ठान है। निश्चय करना बुद्धिका धर्म है। ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य, ऐश्वर्य आदि बुद्धि के गुण हैं। अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व और ईशत्व ये आठ

ऐश्वर्य बुद्धि की ही विशेषताएँ हैं। महत्तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है। महत्तत्व और अहंकार सार्वभौम तत्व होते हुए भी प्रत्येक मनुष्य में इन दोनों तत्वों में विभिन्नता पाई जाती है। अहंकार तत्व की विभिन्नता के कारण ही मनुष्योंमें भी विभिन्नता पाई जाती है। अहंकार से ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। सांख्य-दर्शन में मन के महत्तत्व में तथा बुद्धि एवं अहङ्कार के महत्तत्व में बड़ा अन्तर है। मन केवल विकृति है, किन्तु बुद्धि एवं अहङ्कार प्रकृति एवं विकृति दोनों हैं। वेदान्त में मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार को अन्तःकरण चतुष्टय नाम दिया गया है, किन्तु योग-दर्शन में महत् को ही चित्त कहते हैं। तामस अहङ्कार से तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है और सात्विक अहङ्कार से इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। पंच-तन्मात्राओं से पंचभूतों की उत्पत्ति होती है। स्थूल भूतों का सूक्ष्म रूप तन्मात्राएँ हैं।

दुःख का कारण—हमारा दृष्टि दोष

● अपने स्वरूप का संसार की वास्तविकता का बोध होने पर सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। दुःख तो अपने आपे को भूल जाने का, संसार को कुछ का कुछ समझ बैठने के अज्ञान का है। यह अज्ञान ही भव बन्धन है; इसे ही माया कहते हैं। प्राणी त्रिविधि ताप इसी अज्ञान रूपी नरक की आग में जलने से सहता है।

सच्चिदानन्द परमात्मा ने इस सुरम्य उद्यान में जिसे हम नयनाभिराम और सुखदायी उद्यान कह सकते हैं, दुःख का एक कण भी नहीं है। दुःखी तो हम केवल अपने दृष्टि-दोष के कारण होते हैं। वस्तु व्यक्ति और परिस्थिति का विकृत रूप देखकर ही डरते और भयभीत होते हैं।

यदि हमारा यह दृष्टि-दोष सुधर जाय तो मिथ्या आभास के कारण उत्पन्न हुई भ्रान्ति के निवारण होने में देर न लगे, और आत्मा के निरन्तर आनन्द उल्लास से परिपूर्णता स्थिति बनी रहेगी।

—आचार्य पं० श्रीराम शर्मा

योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज
के निधन पर

श्रद्धांजलि

● श्री हस्टिकेतुसिंह ब. अ.
सैनी सीनियर हायर सैकण्डरी स्कूल, अलवर (राजस्थान)

मौत 'आश्रम' की थी या तेरे मरने की खबर।
मुर्दनी छा गई इन्सान तो क्या पत्थर पर ॥
झुक गई पत्तियाँ, मुरझा गये सहरा के शजर।
रह गये जोर से बहते हुए दरिया थमकर ॥
सर्द शादाब हवा रुक गई कुहसारों की।
रोशनी घट गई दो चार घड़ी तारों की ॥
देखते-देखते क्या हाल हुआ जाता है।
आश्रम के हाथ से 'योगी तलवार' गिरी जाती है ॥

मौत का कोई न कोई बहाना अवश्य होता है। दिनांक २५-२६ जून १९९० की रात को उदर-वेदना से पूज्य गुरुदेव का निधन हो गया। वह एक योगी की नींद में सो गये। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरुदेव को अपने अन्तिम समय का आभास हो गया था इसलिए 'योगी की नींद' वाला अन्तिम लेख शिष्यों के मनन के लिए छोड़ गये हैं। मुझे पूज्य गुरुदेव के दर्शन करने का सौभाग्य नहीं मिला। मैंने तो केवल स्वप्न में ही उनके दर्शन किए हैं। जो भी विचार गुरुदेव हमारे लिए छोड़ गये हैं, हमें उन पर मनन करना चाहिए तथा उसी के मुताबिक अपने जीवन को चलाना चाहिए। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। अतः साहिर 'लुध्यिानवी' के शब्दों में मैं यही कहूँगा—

जिस्म की मौत कोई मौत नहीं होती है,
जिस्म मिट जाने से इन्सान नहीं मर जाते।
धड़कनें रुकने से अरमान नहीं मर जाते,
सांस थम जाने से ऐलान नहीं मर जाते।
होंठ जम जाने से फरमान नहीं मर जाते,
जिस्म की मौत कोई मौत नहीं होती है।"

● डॉ० अनिरुद्ध प्रधान

उपनिषद—गुरु-वाक्य हैं

सम्पूर्ण वेद तीन भागों में विभक्त है—उपनिषद्-भाग, मंत्र-भाग और ब्राह्मण-भाग। उपनिद्-भाग वेद के ज्ञानकाण्ड का प्रकाशक है। इस मन्वन्तर वेद की ११८० शाखाएँ आविर्भूत हुईं। इतनी ही संख्या में उपनिषद, ब्राह्मण और मन्त्र-भाग भी पैदा हुए। पुराणों और उपनिषदों में वेद की यह संख्या पाई जाती है। कलिकाल के प्रभाव से इस संख्या में सहस्रांश भी इस समय नहीं मिलता है। उपनिषदों के तुल्य ग्रन्थ, पुराणों में भी मिलते हैं। जैसे कि महाभारत में श्रीमद्-भगवद्गीता जो कि उपनिषदों का सार कही जाती है। गीता महाभारत की मुकुट-मणि है। गीता के प्रकाशक स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। गीता की सर्वतोमुखी शिक्षा, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से लोगों को उन्नति की ओर ले जाने वाली ज्योति है, श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं।

मायातीत ज्ञान के स्रोत उपनिषद् हैं। उपनिषदोंको ही वेदान्त कहा गया है। वेदांत ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं तथा वेदान्त-वांङ्मय से परे कोई वांङ्मय नहीं। इसी को लक्ष्य करके भगवान श्रीकृष्ण अपने अनन्य भक्तों को उपदेश देते हैं—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन
(गीता २/४५)

अर्थात् हे अर्जुन! संसार के हेतु उपयोगी सम्पूर्ण ज्ञान (यहाँ तक कि वेद भी) माया विषयक हैं। तुझे तो इससे परे मायातीत अवस्था में पहुँचने के लिए मायातीत ज्ञान का उपार्जन करना चाहिए। इस वांङ्मय का भी कुछ नाम होना चाहिए, इसको हम गुरु-वाक्य कह सकते हैं। यह सर्वथा उचित एवं युक्त संगत है! गुरु की स्थिति प्रभु से सर्वथा भिन्न है। एक अर्थ में गुरु प्रभु से भी बड़ा है। संत कबीरजी तो स्पष्ट कहते हैं—

गुरु साहिब दोनों खड़े,
काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की,
जिन साहिब दियो दिखाय॥

तत्वातत्वदर्शी गुरु की कृपा से ही तो हम तत्व को और अतत्व को देख सकेंगे, जान सकेंगे। अतः गुरु की कक्षा इस संसार में सबसे ऊँची है। गुरु से ही हमें उपनयन होता है और गुरुसे ही हमें 'उपनिषद्' द्वारा माया-तीत ज्ञान प्राप्त होता है। कहा भी है—'बिन गुरु होइ न ज्ञान।' उपनिषद् भी कहती है–'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इत्यादि इसी को लक्ष्य करके भगवान श्रीकृष्ण भी अर्जुन को लोक-शिक्षार्थ उपदेश करते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन,
परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं,
ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
(गीता ४/३४)

'अर्जुन ! तू उस तत्व-ज्ञान को तत्त्वदर्शी ज्ञानी गुरुओं के समीप जाकर प्रणामपूर्वक युक्त प्रश्न द्वारा तथा उनकी सेवा करते हुए प्राप्त कर। इस प्रकार वे अवश्य तुझे तत्व-ज्ञान का उपदेश करेंगे।' वस्तुतः गुरु-कृपा से सब कुछ सुलभ है। प्रभु परमेश्वर की कृपा का आधार भी गुरु-कृपा ही है। बिना गुरु-कृपा के परम प्रभु की कृपा नहीं होती और बिना प्रभु की कृपा तत्व-ज्ञान नहीं मिलता। उपनिषद् का स्पष्ट प्रवचन है—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष।
आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

अर्थात् यह परमात्मा जिसके ऊपर कृपा करता है, वही इसे प्राप्त कर पाता है। उसी के लिए यह अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित कर देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुरु की महिमा अनन्त है। उपनिषद्-वांङ्मय उनके तत्वदर्शी गुरुओं के वाक्य ही तो हैं। जो कि भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न रीतियों से उसी एक तत्व-ज्ञान का उपदेश कर रहे हैं। हमें गुरुपदेश के समान श्रद्धा-पूर्वक औपनिषदिक वाक्यों का अनुशीलन करना चाहिए। इतस्ततः उठी हुई शङ्काओं के उत्तर भी श्रद्धापूर्वक उन्हीं में इतस्ततः खोजने चाहिए। अथवा किसी तत्वदर्शी गुरु से शङ्काओं का निवारण करना चाहिए। यदि श्रद्धा है तो अवश्य ही शङ्काओं का समाधान होता जायगा। भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा कितना दृढ़ आश्वासन दिया गया है—

श्रद्धवांल्लभते ज्ञानं,
तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां,
शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
(गीता ४/३९)

'ज्ञान-परायण, जितेन्द्रिय पुरुष यदि श्रद्धावान है तो अवश्य तत्व-ज्ञान को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके वह शीघ्र ही परम शान्ति को भी पा जाता है।

सारांश यह है कि उपनिषद्-वांङ्मय से पाठकों का सम्बन्ध गुरु-शिष्य सम्बन्ध जैसा होना चाहिए। शङ्कायें उठें, कोई चिन्ता नहीं! धैर्यपूर्वक श्रद्धा-समन्वित होकर उनका समाधान प्राप्त करने की उत्कण्ठा रक्खें, समाधान अवश्य प्राप्त होगा, श्रद्धा की महिमा अपार है। अतः उपनिषद् के वाक्य साक्षात् गुरु-वाक्य हैं। इन्हींको भी निःश्रेयस वाक्य भी कह सकते हैं। यही परा विद्या है, इसको जानकर फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। यही जानना परम-प्रयोजन रूप मोक्ष का साधन है।

—० बचे रह सकोगे ०—

यदि तुम अपने हृदय से ईर्ष्या और घृणा का भाव चारों ओर बाहर भेजो, तो वह चक्रवृद्धि ब्याज सहित तुम पर आकर गिरेगा, दुनिया की कोई भी ताकत उसे रोक न सकेगी। यदि तुमने एक बार उस शक्ति को बाहर भेज दिया, तो फिर निश्चित जानो, तुम्हें उसका प्रतिघात सहन करना ही पड़ेगा। यह स्मरण रहने पर तुम कुकर्मों से बचे रह सकोगे।

—स्वामी विवेकानन्द

जाने कितनी बार मिले हैं ?

जग के इस उपवन में हम तुम,
जाने कितनी बार मिले हैं !
जाने कितनी बार यहाँ,
मुरझाये कितनी बार खिले हैं !

जाने कितने हम दोनों ने,
पतझड़ और बसन्त निहारे !
जाने कितने रंग-रूप में,
हम-तुम दोनों गये निखारे !

जाने कितनी बार चली है,
मंजिल हम-तुमने मनचाही ।
जाने कितनी बार बने हैं,
हम-तुम एक राह के राही !

जाने कितनी बार सिन्धु में—
डूबे, कितनी बार तरे हैं !
जाने कितनी बार ज्वार-
भाटों में साथ-साथ उतरे हैं !

जाने कितनी बार वह्नि की—
वेदी पर हम-तुम सोये हैं !
जाने कितनी बार शून्य में,
मिलकर साथ-साथ खोये हैं !

जाने कितनी बार नेह के,
नये-नये नाते जोड़े हैं—
जोड़-जोड़कर और न जाने,
कितनी बार गये तोड़े हैं !

सूत्रधार ने जाने कितने—
हम दोनों के रूप बनाये !
जाने कितनी बार धरा के—
रङ्गमंच पर हम-तुम आये !

जाने कितनी बार यहाँ हम,
बिछुड़े कितनी बार मिले हैं !
जाने कितनी बार यहाँ,
मुरझाये कितनी बार खिले हैं !

रचनाकार—श्री 'दिव्य'

● एक योग-साधक

कर्मकाण्ड एवं योग

भारतीय संस्कृति अनादि काल से ही कर्मकाण्ड से अनुप्राणित रही है। कर्मकाण्ड का आधार वेद है। वेदों में साधना के तीन भाग किये गये हैं—

कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड और उपासनाकांड उनमें से कर्मकांड का भारतीय जन-जीवन में विशेष महत्व है, क्योंकि हिन्दुओं के सभी संस्कार और परम्पराएँ कर्मकांड पर ही आधारित हैं।

उपनिषदों में कर्मकांड को कर्मयोग का ही एक अंग माना गया है और कहा गया है कि—कल्याणकामी मनुष्य को सभी प्रकार की कामनाओं को त्यागकर फल की इच्छा न रखते हुए निरभिमान होकर ईश्वर प्रीत्यर्थ शास्त्रों में विधान किये गये कर्मों को करना चाहिए। इस प्रकार निष्काम भाव से किये जाने वाले कर्म साधक को योगारूढ़ बनाकर उसकी मुक्ति के साधन बन जाते हैं। इसके विपरीत सकाम भाव से अहङ्कारपूर्वक किये गये यज्ञ-योगादि पवित्र कर्म भी उसके बन्धन के कारण बन जाते हैं। देवताओं और पितरों का पूजन, दर्श-पौर्णमास आदि अठारह प्रकार के यज्ञ, पुराणों का पारायण, व्रत-उपवास, वेदोक्त एवं मन्त्रोक्त मन्त्रों का जाप एवं पुरश्चरण ये सभी क्रियाएँ कर्मकांड के अन्तर्गत गिनी जाती हैं। कर्मकांड की ये सभी क्रियाएँ मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार के इच्छित भोगों को प्रदान करने में समर्थ होती हैं, किन्तु उसे परमेश्वर की प्राप्ति रूप शाश्वत सुख नहीं दे सकती। यदि कोई विवेकशील मनुष्य फल की इच्छा न रखते हुए ईश्वरार्पण बुद्धि से ईश्वर प्रीत्यर्थ ही उपरोक्त कर्मों को करता जाता है तो कालान्तरमें पुण्य बढ़ जाने के फलस्वरूप उसे सिद्ध-संगति और पवित्र योग-मार्ग मिल जाता है, जिससे वह संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार योग सिद्धान्तों का पालन करते हुए की जाने वाली कर्मकांड सम्बन्धी क्रियाएँ योग में साथ-साथ अपवर्ग की दात्री भी हो सकती है।

अखिल ब्रह्मांड-नियन्ता योगेश्वर श्रीकृष्ण ने इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए गीता में अपने मुखारविन्द से कहा है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥

(गीता ९/२०)

तीनों वेदों में विधान किये गये कर्मकांड पर अतिशय प्रेम और श्रद्धा रखते हुए सकाम भाव से यज्ञादि पवित्र कर्मों को करने वाले सोमरस को पीने वाले एवं पापों से पवित्र हुए पुरुष मुझ परमेश्वर को यज्ञों द्वारा पूज कर स्वयं की प्राप्ति को चाहते हैं। वे लोग अपने उन पुण्य कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गलोक को प्राप्त करके वहाँ देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं,
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना,
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥
(गीता ९/२१)

वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर और पुण्य क्षीण हो जाने पर पुनः मृत्युलोक में ही प्रवेश करते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में बताये हुए भोगों की कामना वाले मनुष्य बार-बार जन्म-मृत्यु को ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग में जाते हैं और पुण्य क्षीण हो जाने पर पुनः मृत्यु लोक में आ जाते हैं।

योग का स्थान कर्मकांड से बहुत ऊँचा है। गीता में कहा गया है—

जिज्ञासुरपि योगस्य,
शब्द ब्रह्मातिवर्तते ।

योग का जिज्ञासु अर्थात् योग में श्रद्धा रखता हुआ उसकी प्राप्ति के लिए चेष्टा करने वाला एक साधारण-सा योग-साधक भी कर्मकांड से प्राप्त होने वाले इस लोक और परलोक के भोग-जनित सुखों को पार कर जाता है। कर्मकांड के समस्त फल उसे अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु वह उसकी आकांक्षा नहीं रखता। वह इन अनित्य सुखों की उपेक्षा करता हुआ सच्चिदानन्द परमेश्वर की प्राप्ति रूप स्थायी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। मरणोपरान्त उसे भी उत्तम स्वर्गलोक की प्राप्ति हो जाती है और वह दीर्घकाल तक स्वर्गादि उत्तम लोकोंमें वास करके और फिर इस मनुष्य लोक में पवित्र धनवानों अथवा योगियों के कुल में जन्म लेता है। पिछले जन्म में किये गये योगाभ्यास के संस्कारवश उसे जन्मसे ही योगमें रुचि होती है। निरन्तर अभ्यास करता हुआ वह कुछ काल में ही यौगिक ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है और आनन्द के असीम सिन्धु परमेश्वर को पाकर आनन्द में ही निमग्न हो जाता है तथा कर्म-बन्धन क्षीण हो जाने से वह आवागमन के चक्र से सदा-सदा के लिए छूट जाता है।

उपनिषदों में योग को ही मोक्ष का एकमात्र साधन बताया गया है। योग शिखोपनिषद् में कहा गया है—

ज्ञाननिष्ठो विरक्तोऽपि,
धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः ।
विना योगेन देवेन न,
मोक्षं लभते विधे ॥

मनुष्य चाहे ज्ञानी हो, विरक्त धर्मात्मा हो या जितेन्द्रिय हो, किन्तु योगके बिना उसे मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

योग-तत्वोपनिषद का कथन है कि कैवल्य रूपी परमपद योग से भिन्न अन्यान्य मार्गों का आश्रय लेने से प्राप्त नहीं हो सकता। कोरे शास्त्र ज्ञान से भी परमात्म तत्व को नहीं जाना जा सकता। अतः मुमुक्षु को योग निष्ठ होकर आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

ब्रह्मविद्योपनिषद् में कहा गया है कि परमार्थ के पथिक को योग प्राप्ति के निमित्त ही ज्ञानार्जन करना चाहिए, उसी में ही उलझे नहीं रहना चाहिए। जैसे—

उल्काहस्तो यथा कश्चिद्,
द्रव्यमालोक्य तं त्यजेत् ।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य,
पश्चाज्ज्ञानं परित्यजेत् ॥

जिस प्रकार किसी अँधेरे कमरे में रखी हुई वस्तु को मनुष्य हाथ में टार्च लेकर उसके प्रकाश की सहायता से ढूँढ़ता है और जब

उसे वांच्छित वस्तु मिल जाती है, तब वह टार्च को एक ओर रख देता है, फिर उसे उसकी अपेक्षा नहीं रहती। इसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह ज्ञान द्वारा जानने योग्य तत्व परमेश्वर का साक्षात्कार करके फिर ज्ञान को भी छोड़ दे।

इस प्रकार ज्ञान भी योगारूढ़ता का साधनमात्र है, साध्य नहीं।

कर्मकांड में क्रिया की प्रधानता रहती है। ज्ञान और योग को उसमें महत्व नहीं दिया जाता तथा सभी कर्म इस लोक और परलोक के सुखों की कामना लेकर संकल्पपूर्वक किये जाते हैं। अतः संकल्प के अनुरूप ही वे फल के दाता होते हैं। इस प्रकार कर्मकांड का मार्ग प्रवृत्ति मार्ग है। यह मार्ग मनुष्य के परम कल्याण का साधन नहीं है। यहाँ पाठकों के मन में यह प्रश्न पैदा होना स्वाभाविक है कि कर्मकांड परमार्ग का साधन नहीं है तो वेदों में, धर्म-शास्त्र में एवं पुराणोंमें इसका विधान क्यों किया गया है?

इसका उत्तर है-हमारे अनुभवी ऋषियोंने जन्म-जन्मान्तर से भटके हुए जीव को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाने तथा उसे मानव-जीवन के वास्तविक लक्ष्य मोक्षद्वार पर पहुँचाने के लिए अधिकारी भेदसे विविध साधन बताये हैं। उनमें कर्मकांड भी एक सहायक साधन है। यद्यपि मोक्ष का साधन योग-मार्ग ही है, किन्तु बिना पुण्य के पहले तो योग-मार्ग हर व्यक्ति को मिला ही नहीं करता और यदि मिल भी गया तो इस मार्ग में उसकी प्रगति भी उसके पुण्यों पर निर्भर करती है। बिरले सौभाग्यशाली पुण्यात्मा ही अपने पूर्वार्जित पुण्यों के फलस्वरूप इस मार्ग के अनुगामी बना करते हैं। आम लोगों की तो इस मार्ग में प्रवृत्ति होती नहीं जबकि संसार के प्रत्यक्ष सुखों तथा स्वर्गादि लोकों के सुखों के प्रलोभन से जन-साधारण स्वाभाविक ही कर्मकांड के मार्गको अपना लेता है।

जिस प्रकार माता अपने बालक को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाने के लिए उसे कई प्रकार के प्रलोभन देती रहती है और उसे प्रगति के पथ पर आरूढ़ करा देती है। इसी प्रकार वेदों और धर्म-शास्त्र में विधान किये गये कर्मकाण्ड का भी यही उद्देश्य है कि लोग मनमाने आचरण से हटकर मर्यादा का पालन करते हुए पूर्ण सदाचारी बन जाएँ और आत्म-कल्याण के मार्ग में लग जाएँ।

इसके अतिरिक्त कर्मकांड भी अष्टांगयोग का एक बहिरंग साधन है। जिस प्रकार यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार ये योग के बहिरंग अंग हैं। उसी प्रकार कर्मकाण्ड को भी योग का एक बहिरंग अंग कहा जा सकता है, क्योंकि कर्मकाण्ड में शौच, तप, स्वाध्याय आदि नियमों का तथा आसन और प्राणायाम का पूरा-पूरा विधान किया गया है।

कर्मकाण्ड में शौच (शुचिता) पर विशेष बल दिया जाता है। योग-शास्त्र के मतानुसार इस नियम का दृढ़तापूर्वक पालन करने से साधक की अपने शरीर में अपवित्र बुद्धि होकर उसमें भी उसकी आसक्ति नहीं रह जाती है और वह सांसारिक लोगों का संग नहीं चाहता। इस प्रकार वैराग्य के भाव पुष्ट हो जाने से वह समाधि में प्रवेश कर जाता है।

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को योग-दर्शन में क्रियायोग के नाम से वर्णित किया गया है और उस क्रियायोग को अविद्यादि क्लेशोंको दूर करने तथा समाधि सिद्धि

का सरलतम साधन बताया गया है। "द्वन्द सहन तप:" इस परिभाषा के अनुसार सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि के जोड़े को सहन करना 'तप' कहलाता है। कर्मकांडमें विधान किये गये कृच्छ चान्द्रायण आदि कष्ट साध्य व्रत तथा अन्यान्य सैकड़ों प्रकार के व्रत उपवासादि, ग्रीष्मकाल में पंचाग्नि का सेवन, काष्ठमौन, आकारमौन, तीर्थाटन आदि क्रियायें उत्कृष्ट तप की परिचायक हैं। इसी प्रकार आत्म-स्वरूप का बोध कराने वाले सद्ग्रन्थों का अध्ययन एवं मनन तथा मन्त्रों का जाप 'स्वाध्याय' कहलाता है। कर्मकांड में मन्त्रों का जप एवं पुनश्चरण तथा वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण एवं पुराणों के अध्ययन एवं पारायण का पूरा-पूरा विधान किया गया है। अत: स्वाध्याय को कर्मकांड का एक महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है।

इस प्रकार कर्मकांड का मार्ग भी एक योग-परक मार्ग है, किन्तु साधक की प्रगति उसकी श्रद्धा और भावना पर निर्भर करती है। कल्याणकामी व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने आपको कर्मकांड तक ही सीमित न रखे, उससे आगे निकलने की चेष्टा करे, क्योंकि आत्मोत्थान का साधन योग ही है। क्योंकि—

वेदेषु यज्ञेषु तप:सु चैव,
दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिद विदित्वा:
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ।।
(गीता ८/२८)

अर्थात् वेदों में, यज्ञों में, तपों में तथा दानों में जो-जो पुण्य-फल कहे गये हैं; योगी उन सभी पुण्य-फलों से आगे निकलकर आदि स्थान परमात्मा का प्राप्त हो जाता है।

शिव-संहिता में भगवान शिव का पवित्र आदेश है—

कर्मकाण्डस्य माहात्म्यं,
ज्ञात्वा योगी त्यजेत्सुधी ।
पुण्यपापमयं त्यक्त्वा,
ज्ञानकाण्डं प्रवर्तते ।।
आत्मा वा कारे श्रोतव्यो,
मन्तव्य इति यच्छ्रुति ।
सा सेव्या तत्प्रयत्नेन,
मुक्तिदा हेतुदायिनी ।।

कर्मकाण्ड के महात्म्य को जानकर योगी को चाहिए कि वह पुण्य और पाप दोनों को तृणवत् समझता हुआ कर्मकांड का झमेला ही छोड़ दे और सदा ज्ञानकांड में तत्पर रहे।

वेदों में जो यह कहा गया है कि आत्मा को सुनो, आत्मा को मनन करो। अर्थात् जो कुछ है, वह आत्मा ही है। यह श्रुति वाक्य मुक्ति का दाता है, इसी का यत्नपूर्वक सेवन करना चाहिए।

योग-साधक के लिए कर्मकांड का कोई महत्व नहीं रह जाता। मैत्रेयी उपनिषद में यहाँ तक कहा गया है—

पाषाणलोह मणिमृन्मयविग्रहेषु,
पूजापुनर्जनन भोगकारी मुमुक्षो: ।
तस्माद्यति: स्वहृदयमार्जनमेव,
कुर्याद्बाह्यार्चनं परिहरेदपुनर्भवाय ।।

पत्थर, लोहा, मणि अथवा मिट्टी द्वारा निर्मित देव-प्रतिमाओं की पूजा मोक्ष के अभिलाषी के लिए पुनर्जन्म और भोग-प्राप्ति का कारण बन जाती है। इसलिए फिर से जन्म न लेना पड़े, इस उद्देश्य से योगी को चाहिए कि वह ऐसी बाहर की पूजा त्यागकर अपने हृदयमें ही परमेश्वर का पूजन करे। ●

● डॉ० विजयसिंह

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य से पालब्रण्टन की भेंट-वार्ता

पालब्रण्टन अपने एक विद्वान हिन्दू दोस्त के साथ कुम्भकोणम् के श्री शंकराचार्य जी के दर्शनार्थ बंगले पर गया। वैदिक मर्यादाओं के अनुसार अत्यधिक व्यस्त कार्य-क्रम होने के कारण पालब्रण्टन के मित्र को परिश्रम करने पर ही श्री शंकराचार्य जी से भेंट का समय मिल पाया। प्रारम्भिक वार्ता में पालब्रण्टन ने कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा—

जगद्गुरु महाराज ने अपने दर्शन की अनुमति देकर मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया है। मेरे मन में कुछ प्रश्न हैं, उन्हें पूछने की क्या मैं धृष्टता करूँ? मन्द मुस्कान द्वारा स्वीकृति प्रदान होने पर पालब्रण्टन ने पूछा-आपकी राय में, दुनिया की राजनैतिक और आर्थिक दुःवस्था कब तक सुधर सकती है?

जगद्गुरु—निकट भविष्य में उसका सुधार एक अनहोनी बात होगी। जबकि हर साल संहारक हथियार बनाने में दुनिया की सभी जातियाँ करोड़ों रुपये फूँक रही हैं, तो दुनिया की हालत कैसे सुधर सकती है? यदि दुनिया में आध्यात्मिक ज्योति की प्राप्ति कर लेने वालों की संख्या अधिक हो जाय तो दुनिया की रंगत बदल जायेगी। भारत के लिए यह गौरव की बात है कि वह अब भी अपने सच्चे आध्यात्मिक व्यक्तियों का आदर करता है। यदि सारी दुनिया भारत का अनुकरण करे और अन्तर्दृष्टि वाले महात्माओं के आदेशों पर चलें, तो शीघ्र ही दुनिया में सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जावेगा। सम्पन्नता सहज ही मानव मात्र के लिए सुलभ होगी।

पालब्रण्टन ने श्री शङ्कराचार्यजी से कुछ उनकी निजी बातें पूछने की अनुमति माँगी। स्वीकृति मिलने पर उसने पूछा—कितने वर्षों से जगद्गुरुजी इस पीठ की शोभा बढ़ा रहे हैं?

श्री शङ्कराचार्यजी—१६०७ ई० से। उस समय मैं बारह वर्ष का था। अपनी नियुक्ति के बाद जब मैंने कावेरी नदी के किनारे तीन वर्ष तक सारा समय ध्यान और स्वाध्याय में व्यतीत किया, तब से मैं जन-साधारण की सेवा में लगा हूँ।

पालब्रण्टन—मैं ऐसे योगी से मिलने के लिए बड़ा उत्सुक हूँ, जिसने उत्तमोत्तम सिद्धियाँ प्राप्त की हों और उनका कुछ मुझे आभास भी करा सके।

श्री शङ्कराचार्य जी—यदि तुम उत्तम योग-दीक्षा पाने की अभिलाषा रखते हो, तो यह ठीक ही है। तुम्हारा यह उद्योग ही तुम्हें एक दिन तुम्हारे गुरु से मिला देगा। फिर भी तुम्हें एक बार यहाँ से भी दक्षिण जाना चाहिए। वहाँ एक महर्षि निवास करते हैं। ज्योतिर्गिरि अरुणाचल पर। मैं तुम्हें पता दिये देता हूँ, जिससे तुम उन्हें सहज ही खोज लोगे।

रात्रि में पालब्रण्टन को दिव्यानुभूति

भगवान शङ्कराचार्यजी के दर्शन करके लौटकर थकामारा पालब्रण्टन रात्रि में जब वह सो गया, तो अचानक उसकी नींद पौने तीन बजे खुल गई। उसे भान हुआ कि बिस्तर के पैताने, कोई चीज चमक रही है। वह एकदम उठ बैठा और सीधी नजर से उसको देखने लगा। उसकी चकित दृष्टि के सामने श्री शङ्कराचार्य जी की दिव्य मूर्ति दिखाई दी। निश्चय ही उसे किसी प्रकार का भ्रम नहीं हुआ था। वह मूर्ति साफ-साफ कमरे के अन्धेरे में दिखाई पड़ रही थी। वह शरीरधारी मनुष्य की ठोस मूर्ति थी। एक विचित्र तेज-पुञ्ज विकसिक हो रहा था।

इसकी जाँच करने के लिए उसने मजबूती से आँखें बन्द करलीं, लेकिन इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। उसे अब भी उनकी वह दिव्य मूर्ति स्पष्ट रूप से दीख पड़ रही थी।

उसे प्रतीत हुआ कि उस मूर्ति से एक गरिमामय भाव प्रकीर्ण हो रहा है। पुनः आँखें खोलकर एक बार उसने गेरुआ वस्त्र-धारी मूर्ति की ओर देखा।

मूर्ति की मुख-मुद्रा कुछ बदली और मुस्कराते हुए होंठ स्पन्दित हुए—"विनम्र बनो! तुम्हें तुम्हारी साधना की वस्तु अवश्य प्राप्त होगी।" उसे प्रतीत हुआ कि सशरीर प्रकट होकर वे महात्मा बात कर रहे हों। आश्चर्य यह है कि जिस रहस्यमय ढंग से वे प्रकट हुए थे, उतने ही विस्मयकारी ढंग से तिरोहित हो गये। पालब्रण्टन फिर सो न सका, उसके मन में उल्लास, प्रसन्नता भर उठी। वह निरन्तर जगद्गुरु से हुई भेंट और इस दिव्यानुभूति का चिन्तन करता रहा।

ईश्वरः सर्व-भूतानाम् हृद्-देशे अर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व-भूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में वास करता है और अपनी माया के बल से वह सब जीवों को, उनके कर्मानुसार, यन्त्र पर चढ़ी हुई वस्तु के समान घुमाता है। [ईश्वर जीवों को संसार में उसी प्रकार घुमाता है, जैसे कुम्हार चाक पर चढ़े हुआ घड़ा आदि बर्तनों को घुमाता है।]

—गीता

कैसा हो गया कमाल !

● पं० रामबोध पाण्डेय व्यास, योग आश्रम, लखनऊ

ऐसे ही खेल के लिये, रखते थे सदा काल,
हे योगिराज सन्त, कैसा हो गया कमाल !
ओउम् नमः शिवाय, ओउम् नमः शिवाय !!

लाखों अनाथ बच्चे भला जायेंगे कहाँ,
तुमसा सुयोग्य बाप अब वह पायेंगे कहाँ ।
क्या इसी कार्य के लिए पाला था सदा ख्याल,
हे योगिराज सन्त कैसा हो गया कमाल !!
ओउम् नमः शिवाय, ओउम् नमः शिवाय !!१

माना कि आपने हमें वह दृश्य दिखाया,
ऋषियों ने जिसे रोका था, प्रत्यक्ष दिखाया ।
फिर हम अबोध बालकों का हो गया क्या हाल,
हे योगिराज सन्त कैसा हो गया कमाल !!
ओउम् नमः शिवाय, ओउम् नमः शिवाय !!२

तुम ही थे हम गरीबों के एकमात्र सहारा,
नैया सभी की पार की थी, जिसने पुकारा ।
कैसे बचेंगे हम सभी, लिपटी जो महा जाल,
हे योगिराज सन्त कैसा हो गया कमाल !!
ओउम् नमः शिवाय, ओउम् नमः शिवाय !!३

प्रकटो धरा पै शीघ्र, नये रूप में मोहन,
दुखियों को पिलाओ अमृत का दोहन ।
उत्पातियों के लिए बनो जल्द महाकाल
हे योगिराज सन्त कैसा हो गया कमाल !!
ओउम् नमः शिवाय, ओउम् नमः शिवाय !!४

हम आपके थे, आपके ही सदा रहेंगे,
आशा की बैठ किश्ती पै, दुःख द्वन्द्व सहेंगे ।
मोहन की तरह गोहन, किश्ती के बनो पाल,
हे योगिराज सन्त, कैसा हो गया कमाल !!
ओउम् नमः शिवाय, ओउम् नमः शिवाय !!५

परब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप

- वह अनादि तथा अनन्त ब्रह्म है। न उसका आदि है और न अन्त। न उसका कभी जन्म होता है और कभी मृत्यु।
- वह अकथनीय होनेके कारण न सत् ही कहा जा सकता है और न असत्। किसी भी प्रमाण के उसके वास्तविक स्वरूप का निश्चय नहीं किया जा सकता। जो उसे जैसा जानता है वह उसके लिए वह वैसा ही है।
- वह सब इन्द्रियों से रहित है। परन्तु जो उसे मानते हैं उनके लिए उसके हजारों इन्द्रियाँ हैं अर्थात् वह सब ओर से हाथ, पैर, सिर, मुख, आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों वाला है। इन्हीं इन्द्रियों से वह अपने भक्तों के सब कार्य पूरे करता है और अपने भक्तों के द्वारा अर्पित की गई वस्तुओं को ग्रहण करता है।
- वह सदा निर्गुण व निराकार है, परन्तु अपने भक्तों के लिए वह सगुण और साकार भी है।
- किसीमें भी उसकी आसक्ति नहीं, फिर भी वह सबका धारण-पोषण करने वाला है।
- वह चर और अचर सब भूतोंके बाहर भी है और अन्दर भी। शरीर भी वही है और शरीरी (आत्मा) भी वही है।
- वह इतना सूक्ष्म है कि किसीभी साधन से जाना नहीं जा सकता। जैसे तारमें व्याप्त रहने वाली बिजली को सूक्ष्म होनेके कारण देखा नहीं जा सकता, वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा को भी देखा नहीं जा सकता, केवल योगी पुरुष ही उसे देख पाते हैं। साधारण पुरुष तो उसके अलौकिक कार्यों को देखकर ही उसकी सत्ता का अनुभव कर पाते हैं।
- वह अत्यन्त समीप है अर्थात् आत्मा के रूप में अपने अन्दर ही रहता है, परन्तु जो आत्मा को परमात्मा से पृथक् मानते हैं उनके लिए वह अत्यन्त दूर भी है।
- वह अखण्ड अर्थात् विभाग रहित है, परन्तु साधारण मनुष्यों को वह चराचर सम्पूर्ण भूतों में विभक्त-सा प्रतीत होता है।
- वह ब्रह्मा बनकर सबको उत्पन्न करता है, विष्णु रूप से सबका धारण-पोषण करता है तथा रुद्र रूप से सबका संहार भी वही करता है।
- वह ज्योतियों की भी ज्योति है अर्थात् अग्नि, चन्द्र, सूर्य आदि सबकी ज्योति (तेज व प्रकाश) का मूल वही है। वह गुरुओं का भी गुरु है। अज्ञान रूपी घोर अन्धकार को पूर्णतः हटाने में वही समर्थ है।
- माया में स्थित हुआ भी माया से पूर्णतः परे है अर्थात् शरीर में रहने पर भी शरीर के गुणों से सर्वथा परे अर्थात् गुणातीत है।

संक्षेप में, 'इस शरीरमें रहने वाला जो आत्मा रूपी परम पुरुष है वह सर्वसाक्षी अनुमति देने वाला, भर्ता, भोक्ता, महेश्वर और परमात्मा भी कहलाता है।'

ब्रह्म के स्वरूप की उपर्युक्त विशेषताएँ केवल संकेतमात्र है। वास्तव में उसके स्वरूप का वर्णन किया ही नहीं जा सकता। जो व्यक्ति इन विशेषताओं को भली प्रकार समझकर वैसा ही व्यवहार करने लगता है वह तत्वज्ञानी हो जाता है।—वेदान्त भारती

योग-योगेश्वर अनंत श्री चन्द्रमोहन सद्गुरुदेवजी को

श्रद्धाञ्जलि

● ब्र० श्री ओमप्रकाश, लखनऊ

अर्पित गुरु तेरे चरणों में, श्रद्धा के ये भाव सुमन ।
हे योगसिद्ध, हे योगेश्वर, हे जन-जन के मन के मोहन ॥

हे मन आँगन के विमल गगन,
हे भाव धरा के दिव्य सुमन ।
हे योग ज्ञान के बोध किरण,
हे योग सुरभि के शुद्ध पवन ॥

जग भोग छीनकर योग दिया,
जग को जीवन का अर्थ दिया ।
संयम, साधना-योग की ही,
जग-जीवन का पाथेय बना ॥

तुम रहे बाँटते जीवन भर,
जिसने चाहा जितना-उतना ।
ध्यान औ, गीता ज्ञान दिया,
स्वास्थ्य औ, जीवन दान दिया ॥

बदले में सबका पाप लिया,
रोग लिया, दुःख ताप लिया ।
गाली भी दी जिसने तुमको,
उसको भी प्रेम-प्रसाद दिया ॥

कह सका पराया कौन तुम्हें,
तुम सबके थे, इतने अपने ।
तुम्हें पाकर धन्य हुए सारे,
तुमने कितने पापी तारे ॥

थे सरल, सादगी के प्रतीक,
धोती, कुर्ता, सादा सटीक ।
थे मृदुभाषी, सतभाषी भी,
कथनी, करनी, सब ठीक-ठीक ॥

कहते थे, एक सिपाही हूँ,
निष्कर्म योग का राही हूँ ।
निज गुरु की, आज्ञा के प्रतीक,
'अच्छा लल्ला' वाणी थी नीक ॥

माया ठगिनी ने जाल बिछा,
भोले बाबा को फँसा लिया ।
जो सबके थे, उन पर अपना,
एकाधिकार सा जमा लिया ॥

बेचैन किया सबने मिलकर,
दुःख दर्द दिया, सबने मिलकर ।
दम घोट दिया, संतापों से,
निज क्रूर कर्म, अभिशापों से ॥

आखिर परिणाम यही निकला,
कुछ ठगियों के कृत कामों का ।
दम तोड़ दिया, सब छोड़ दिया,
योगी ने, जग को छोड़ दिया ॥

देगा अब कौन ! पुष्प-प्रसाद,
अब कहाँ मिले शुभ आशीर्वाद ।
अब कौन हरे, दुःख दर्द नाथ,
क्यों हम सबको कर गये अनाथ !!

कुछ ठगियों ने ठग छीन लिया,
हमसे जीवन धन, प्यारे को !
कर दिया अलग उनको हमसे,
सबके नैनों के तारे को ॥

ओ ! सिद्धयोग, अनुपम योगी,
दे गये आज चिर क्यों वियोग ।
अब कहाँ मिलेगा तुमसा धन,
अब कहाँ मिलेगा सुखद ठौर ॥

अब कहाँ मिलेगा, लाड़ प्यार,
अब कहाँ मिलेगा, योग-सार ।
स्वीकार करो शतवार नमन,
हे जन-जन के मन के मोहन ॥

प्रेषक कार्यालय : —

सि द्ध यो ग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर)
आगरा।

PRINTED MATTER
Book-Post

श्री 1925
सुरेन्द्र कुमार त्रिपाठी
श्री एल. डी. दण्डोतिया सरकारी वकील
का मकान गणेशपुरा मुरैना म. प्र.

श्रम और सम्पत्ति

सम्पत्ति रूपी ये सब चीजें बनती कैसे हैं? सृष्टि में जो नानाविधि द्रव्य तथा प्राकृतिक साधन हैं, उनको लेकर मनुष्य शरीर श्रम करता है, तब यह काम की चीजें बनती हैं। अतः सम्पत्ति के मुख्य साधन दो हैं : सृष्टि के द्रव्य और मनुष्य का शरीर-श्रम। यन्त्र से कुछ चीजें बनती दीखती हैं, पर वे यन्त्र भी शरीर श्रम से बनते हैं और उनको चलाने में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शरीरश्रम की आवश्यकता होती है। केवल बौद्धिक-श्रम से कोई उपयोग की चीज नहीं बन सकती, अर्थात् बिना शरीर-श्रम के सम्पत्ति का निर्माण नहीं हो सकता।

—श्री शरदकुमार साधक